

सिरि-भगवंत-पुष्प-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तरस्स

पढमखंडे जीवट्ठाणे

चूलिया

तिहुवणसिरसेहरए भवभयगब्भादु णिग्गदे पणउं

सिध्दे जीवट्ठाणस्समलिणगुणचूलियं वोच्छं ।।

कदि काओ पयडीओ बंधदि, केव्वडि कालड्ढिदिएहि कम्मेहि सम्मतं लम्भदि वा ण लम्भदि(लम्भादि मु.) वा, केव्वचिरेण कालेण वा कदि (केव्वचिरेण वा कालेण कदि ता.) भाए वा करेदि मिच्छत्तं, उवसामणा वा खवणा वा केसु व खेतेसु कस्स व मूले केव्वडियं वा दंसणमोहणीयं कम्मं खवेतस्स चारित्तं वा संपुण्णंपडिवज्जंतस्स ॥१॥

त्रिभुवनरुप लोकके शिर पर स्थित शेखरस्वरुप और भव-भयके गर्भसे विनिर्गत ऐसे सिध्दोंको प्रणाम करके जीवस्थान नामके प्रथम खंडकी निर्मल गुणवाली चूलिकाको कहता हूं।

सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव कितनी और किन प्रकृतियोंको बांधता है, कितने काल_स्थितिवाले कर्मोंके तथा सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, अथवा नहीं प्राप्त करता है कितने कालके द्वारा मिथ्यात्व कर्मको कितने भागरुप करता है, और किन किन क्षेत्रमें तथा किसके पासनें कितने दर्शनमोहनीय कर्मको क्षपण करनेवाले जीवके और सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त होनेवाले जीवके मोहनीय कर्मकी उपशामना तथा क्षपणा होती है ॥१॥

छक्खंडागमे जीवट्ठाणं

समत्तेसु (सम्मतेसु मु.) अट्ठसु अणियोगददारेसु चूलिया किमट्ठमागदा ? पुब्बुत्ताणमट्ठणमणि-ओगद्दाराण विसमपएसविवरणट्ठमागदा । एत्थ चोदओ भणदि - अट्ठहि आणिओगद्दारेहि परुविदमेव अट्ठं किं चूलिया परु वेदि, अण्णं वा ? जदि तं चेव परु वेदि, तो पुणरु त्तदोसो । विदीए चोद्दसजीवसमासपडिबध्दं वा परु वेदि, अप्पडिबध्दं वा ? पढमवियप्पे चोद्दसण्हं जीवसमासाणं परु वणट्ठदाए तत्थ इमाणि अट्ठ चेव अणिओगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति (सत्प्ररु सू.५) ति एदस्स सुत्तस्स अवहारणपदस्स विहलत्तं पसज्जदे। कुदो ? चूलियासण्णिदस्स चोद्दसजीवसमासपडिबध्दट्ठपरुवयस्त णवमस्स अणिओगद्दारस्सुवलंभा। विदीए चूलिया जीवट्ठाणादो पुधभूदा होज्ज, चोद्दसजीवसमासपडिबध्दअठ्ठे अभणंतस्स जीवट्ठाणववएसविरोहा ?

एत्थ परिहारो उच्चदे-ण ताव पुणरुत्तदोसो, अट्ठाणिओगद्दारेहि अपरुविदस्स तत्थ उत्तत्यणिच्छयजणणस्स अट्ठस्स तदो कयंचि पुधभूदस्त तेहि चेव सूचिदस्स परुवणादो। ण च एवकारपदस्स विहलत्तं, चूलियाए अट्ठाणिओगददारेसू अंतब्भावादो।

शंका --- जीवस्थाननामक प्रथम खंडसम्बन्धी आठों अनुयोगद्वारोंके समाप्त हो जाने पर यह चूलिका नामक अधिकार किसलिए आया है ?

समाधान -- पूर्वोक्त आठों अनुयोगद्वारोंके विषम-स्थलोंके विवरणके लिये यह चूलिका नामक अधिकार आया हैं।

शंका --- यंहा पर शंकाकार कहता है कि-चूलिकानामक अधिकार आठों अनुयोगद्वारोंसे प्ररुपित ही अर्थको प्ररुपण करता है, अथवा अन्य अर्थको ? यदि उसी अर्थको प्ररुपित करता है तो पुनरुक्तदोष आता है। द्वितीय पक्षमें वह चतुर्दश-जीवसमास-प्रतिबध्द अर्थका प्ररुपण करता हैं, अथवा चतुर्दश-जीवसमास-अप्रतिबध्द अर्थका ? प्रथम विकल्पके मानने पर --- चौदह जीवसमासोंके प्ररुपण करनेके लिये उस विषयमें ये आठ ही अनुयोगद्वार जानने योग्य है इस प्रकारके इस सूत्रके अवधारणरु प एवकारपदके विफलता प्राप्त होती है, क्योंकि चतुर्दश-- जीवसमासमें प्रतिबध्द अर्थका प्ररुपण करनेवाला चूलिकासंज्ञित नवमां अनुयोगद्वार पाया है

द्वितीय पक्षके मानने पर चूलिकानामक अधिकार जीवस्थानसे पृथग्भूत हो जायगा, क्योंकि, चतुर्दश-जीवसमास-प्रतिबध्द अर्थोंको नहीं कहनेवाले अधिकारके जीवस्थान इस संज्ञाका विरोध हैं ?

समाधान -- यहां पर उक्त शंकाका परिहार किया जाता है -- न तो प्रथम पक्षमें दिया गया पुनरुक्त दोष जाता है, क्योंकि, आठों ही अनुयोगद्वारोंसे नहीं प्ररुपण किये गये, तथा वहां पर कहे गये अर्थ के निश्चय उत्पन्न करनेवाले और जीवस्थानसे कथंचित पृथग्भूत तथा उन आठों अनुयोगद्वारोंसे ही सूचित अर्थका इस चूलिकानामक अधिकारमें प्ररुपण किया है। द्वितीय पक्षके अन्तर्गत प्रथम पक्षमें बतलाई गई एवकार पदकी विफलता भी नहीं आती हैं, क्योंकि चूलिकाका आठों अनुयोगद्वारोंमें अन्तर्भाव हो जाता है।

चूलियाए अवयारपरुवणं

कधमंतब्भावो? अद्वाणिओगद्दरसूइदडुरुवणादो।तं जहा -खेत कालंतरअणिओगददारेहि गदिरागदी सूचिदा। सा वि गदिरागदी पयडिसमुक्कित्तणं द्वाणंसमुक्कित्तणं च सुचेदि, बंधेण विगा सतविहपरियट्टेसु परियट्टणाणुववत्तीदो। पयडि _ टटाणंसमुक्कित्तणेहि जहण्णुक्कस्सट्ठिदीओ सूचिदाओ , सकसायजीवस्य ट्ठिदिबंधेण विणा पयडिबंधाणुववत्तीदो। अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणमिदि वयणेण पढमसम्मत्तग्गहण सूचिदं , अण्णहा देसूणद्ध-पोग्गलपरियट्टमेत्तमिच्छत्ठिदीए संभवाभावा। तेण वि पढमसम्मत्तग्गहणेण तिण्णि महादंडया पढमसम्मत्तग्गहणजोग्गखेत्तिदिय तिविहकरण- पज्जत्तट्ठिदि -अणुभागखंडयादओ सुचिदा होंति । एदेणेव मोक्खो वि सूचिदो। कुदो ? अद्धपोग्गलपरियट्टादो उवरि आलीढसम्मताणं संसाराभावा। तेण वि मोक्खेण दंसण-चारित्तमोहणीयखवणविहाणं तज्जोग्गखेत-गइ-करण द्विदीओ च सूचिदा भवंति। ण च तेसिं तत्थ णिण्णओ कदो, तत्थ णिण्णये कीरमाणे सिस्साणं मइवाउलत्तप्पसंगा। ण विदियवियप्पो , अण्णभुवगमादो।

शंका --- चूलिकाका आठों अनुयोगध्दारोंमे अन्तर्भाव कैसे होता है ?

समाधान --- क्योंकि , चूलिकानामक अधिकार आठों अनुयोगध्दारोंसे सूचित अर्थका प्ररुपण करता है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है --क्षेत्रप्ररुपणा कालप्ररुपणा और अन्तरप्ररुपणा, इन तीन अनुयोगध्दारोंसे गति -आगति नामकी चूलिका सूचित की गई है। और वह गति-आगति चूलिका भी प्रकृतिसमुत्कीर्तन और स्थानसमुत्कीर्तन इन दो अधिकारोंको सूचित करती है , क्योंकि कर्म-बंधके बिना सात प्रकारके परिवर्तनमें परिभ्रमण हो नहीं सकता है । प्रकृतिसमुत्कीर्तन और स्थानसमुत्कीर्तनके ध्दारा (कर्मोकी) जघन्यस्थिति और उत्कृष्टस्थिति नामकी दो चूलिकाएं सूचित की गई है, क्योंकि, सकषाय जीवकेस्थितिबंधकेविना प्रकृतिबंध नहीं हो सकता हैं कालप्ररुपणामें कहे गये देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन इस वचनसे प्रथमसम्यक्त्वका ग्रहण सूचित किया गया है । यदि ऐसा न माना जाय, तो देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र मिथ्यात्वकी स्थितिका होना संभव नहीं है। उस प्रथमसम्यक्त्व-ग्रहणके ध्दारा भी तीन महादंडक , प्रथमसम्यक्त्व - ग्रहण करनेके योग्य क्षेत्र इंद्रिय, त्रिविधकरणकी प्राप्ति, पर्याप्तकपना, स्थितिखंड और अनुभागखंड आदिक सूचित किये गये है, क्योंकि , जिन्होंने एक बार सम्यक्त्वको प्राप्त किया है ऐसे जीवोंको अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालसे ऊपर संसारका अभाव हो जाता है। उस मोक्षके ध्दारा भी दर्शन-मोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्मके क्षपणका विधान, उसके योग्य क्षेत्र, गति, कारण और स्थितियां सूचित की गई है। इन सब बातोंका उन आठ अनुयोगध्दारोंमे निर्णय नहीं किया गया है, क्योंकि , वहां उन सबका निर्णय करने पर शिष्योंके बुद्धि-व्याकुलताका प्रसंग प्राप्त होता । द्वितीय विकल्प भी ठीक नहीं है , क्योंकि, चूलिकाको जीवस्थानसे पृथभूत नहीं माना गया है।

छक्खंडागमे जीवट्टाणं

सा वि चूलिया एयविहा होदि सामण्णविवक्खाए, पज्जवट्टियणयादो णवविहा ।

तं जहा 'कदि पगडीओ बंधदि' ति पदे पगडि-ड्वाणसमुक्कित्तणसण्णिदाओ दोण्णि चूलियाओ होंति। 'काओ पयडीओ बंधदि' ति पदम्हि पढम -विदिय-तदियदंडय-सण्णिदाओ तिण्णि

चूलियाओ टिट्टदाओ। ‘केन्द्रिकालद्विदिएहि(उवसमणा ता. २।)कम्मेहि सम्मत्तं लभदि वा ण लभदिलब्भदि मु.व्वा ण लभदिलब्भदि मु.वा ’ ति पदम्हि जहण्णुक्कस्सट्ठिसण्णिदाओ दोण्णि चूलियाओ अवटिट्टदाओ । ‘केन्द्रचिरेण कालेणकदि भाए वा करेदि मिच्छत्तं, उवसामणा वा खवणा वा केसु व खेत्तेसु खेत्ते ता.२। कस्स व मूले, केन्द्रियं वा दंसणमोहणीयं कम्मं खवेंतस्स चारित्तं वा संपुण्णं चरित्र संपुण्णं वा ता. २। पड्विज्जंतस्स’ एदेसु पदेसु अट्ठमी चूलिया। ‘वा संपुण्णं’ ति ‘वा’ सददम्हि गदिरागदी णाम णवमी चूलिया। एवं णव चूलिया होंति। अवंतरभेएण अवांतामेएण मु.। अणेय विहाओ वा। एदासिं णव चूलियाणमट्ठपरुवणट्ठमुवरिमसुत्तं भणदि कदि काओ पगडीओ बंधदि ति जं पदं तस्स विहासा ॥२॥

‘जहा उद्देसो तहा णिद्देसो’ति णायादो पढममुदिदट्ठस्स पढमं चेव णिद्देसो

वह चूलिका भी सामान्य विवक्षासे एक प्रकारकी है और पर्यायार्थिक नयसे नौ प्रकारकी है। वह इस प्रकार है ‘कितनी प्रकृतियां बांधता है’ इस पदमें प्रकृति-समुत्कीर्त और स्थानसमुत्कीर्तन नामक दो चूलिकाएं आई हैं। ‘किन प्रकृतियोंको बांधता है’ इस पदमें प्रथम, द्वितीय और तृतीय दंडक नामवाली तीन चूलिकाएं अवस्थित हैं। ‘कितने काल-स्थितिवाले कर्मोंके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त करता हैं’ अथवा नहीं प्राप्त करता हैं इस पदमें जघन्यस्थिति और उत्कृष्टस्थिति नामकी दो चूलिकाएं अवस्थित हैं। कितने कालके द्वारा मिथ्यात्वकर्मको कितने भागरूप करता है, और किन क्षेत्रोंमें तथा किसके पासमें कितने दर्शनमोहनीयकर्मको क्षपण करनेवाले और सम्पूर्ण चारित्रको प्राप्त होनेवाले जीवके मोहनीयकर्मकी उपशमना तथा क्षपण होती है इन पदोंमें आठवी चूलिका आई है तथा वा संपुण्णं इस वाक्यमें आये हुए वा शब्दमें गति-आगति नामकी नवमी चूलिका विवक्षित है। इस प्रकार पूर्वोक्त सर्व चूलिकाएं नौ होती हैं। अथवा, आवान्तर भेदकी अपेक्षा चूलिकाएं अनेक प्रकारकी हैं।

अब इन नवों चूलिकाओंके अर्थ -प्ररूपणके लिए आचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं—

कितनी और किन प्रकृतियोंको बांधता हैं यह जो पूर्वसूत्र -पठित पद है, उसका व्याख्यान किया जाता है ॥२॥

शंका --- जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश किया जाता हैं। इस न्यायके अनुसार पहले उद्देश किये गये पदार्थका पहले ही निर्देश होता है, यह

चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणं

होदि ति णव्वदे। तदो णाढवेदव्वमिदं सुत्तमिदि ण एस दोसो, एदम्हि पदे इमाओ चूलियाओ अवट्ठिदाओ, इमाओ वि ण ट्ठिदाओ ति जाणावणटठं, जहा उद्देशो तथा णिददेशो, ति णायस्स अत्थिपरुवणटठं च तदारंभादो। विविहा भासा विहासा, परुवणा णिरुवणा वक्खाणमिदि एयट्ठो।

इदाणिं पगडिसमुक्कित्तणं कस्सामो (कस्सोमो ता.२) ॥३॥

पगडीणं समुक्कित्तणं पगडिसमुक्कित्तणं, पयडिसरुवणिरुवणमिदि जं उत्तं होदि ।

इदाणिं संपहि, कस्सामो भणिस्सामो ति एयट्ठो। पढमं पयडिसमुक्कित्तणं चेव किमट्ठं उच्चदे ? ण, पयडीए अणवगदाए ट्ठाणसमुक्कित्तणादीणमवगमोवायाभावा ण च अवय-विणि अणवगदे अवयवा अवगंतुं सक्किज्जंते, अण्णत्थ तहाणुवलंभा। तम्हा पयडिसमु-क्कित्तणमेव पुव्वं परुविज्जदे। तं पि पयडिसमुक्कित्तणं मूलुत्तरपयडिसमुक्कित्तणभेएण दुविहं होइ । संगहियासेसवियप्पा दव्वट्ठियणयणिबंधणा मूलपयडी णाम । पुध पुधा

बात जानी जाती है। अतएव यह सूत्र आरम्भ नहीं करना चाहिए ?

समाधान --- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, इस पदमें ये चूलिकाएं अवस्थित है, और ये चूलिकाएं अवस्थित नहीं है, इस बातको ज्ञान करानेके लिए, तथा जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है इस न्यायके अस्तित्व-प्ररुपणके लिए इस सूत्रका आरम्भ किया गया है।

विविध प्रकारके भाषण अर्थात् कथन करनेको विभाषा कहते है। विभाषा, प्ररुपणा, निरुपणा और व्याख्यान, ये सब एकार्थ-वाचक नाम है।

अब प्रकृतियोंके स्वरूपका निरुपण करेंगे ॥३॥

प्रकृतियोंके समुत्कीर्तनको प्रकृतिसमुत्कीर्तन कहते है, जिसका कि अर्थ प्रकृतियोंके

स्वरूपका निरूपण करना होता है। इस समय अर्थात् आठों प्ररूपणाओंके पश्चात् अब, करेंगे अर्थात् प्रकृति समुत्कीर्तन नामकी चूलिकाको कहेंगे। कस्सामो तथा भणिससामो मे दोनों शब्द एकार्थक है।

शंका--पहले प्रकृतिसमुत्कीर्तनको ही किसलिए कहते हैं ?

समाधान --नहीं, क्योंकि, प्रकृतियोंके अज्ञात होने पर स्यानसमुत्कीर्तन आदिके ज्ञानका कोई उपाय नहीं है। दूसरी बात यह है कि अवयवीके अज्ञात रहने पर अवयव नहीं जाने जा सकते हैं, क्योंकि, अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता। इसलिए प्रकृतिसमुत्कीर्तनको ही पहले कहते हैं।

वह प्रकृतिसमुत्कीर्तन भी मूलप्रकृतिसमुत्कीर्तन और उत्तरप्रकृतिसमुत्कीर्तनके भेदसे दो प्रकारका है। अपने अन्तर्गत समस्त भेदोंका संग्रह करनेवाली और द्रव्यार्थिकनय-निबन्धनक प्रकृतिका नाम मूलप्रकृति है। पृथक्पृथक् अवयववाली

छक्खंडागमे जीवट्ठाणं

वयवा (पुधप्पिदावयवा ता. २) पज्जवट्ठियणयणिबंधणा उत्तरपयडी णाम। तत्थ मूलपयडिसमुक्कित्तणं पढमं किमट्ठं कीरदे ? ण एस ढोसा, मूलपयडीए संगहिदासेसुत्तरपयडीए परुविदाए उत्तर-पयडिपरुवणुववत्तीदो। तं जहा ॥४॥

पुच्छासुत्तमेदं किमट्ठं वुच्चदे ? सुत्तकत्तारस्स पमाणत्तपरुवणादो सुत्तस्स पमाणत्तपरुवणट्ठं।

णाणावरणीयं ॥५॥

णाणमवबोहो अवगमो परिच्छेदो इदि एयट्ठो। तमावारेदि ति णाणावरणीय कम्मं (स.सि. ८. ४ . त रा. वा. ८. ४.)। णाणविणासयमिदि किण्ण उच्चदे ? ण, जीवलक्खणाण णाण_दंसणाणं विणासा_भावा। विणासे वा जीवस्स वि विणासो होज्ज, लक्खणरहिय-लक्खणुवलंभा। णाणस्स विणासाभावे सब्वजीवाणं णाणत्थित्तं पसज्जदे चे, होदु णाम विरोहाभावा.,

तथा पर्यार्थिकनय-निमित्तक प्रकृतिको उत्तरप्रकृति कहते हैं।

शंका -इन दोनों भेदोंमेंसे मूलप्रकृतिसमुत्कीर्तन पहले किसलिए करते है ?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि , समस्त उत्तर प्रकृतियोंका संग्रह करनेवाली मूलप्रकृतिके प्ररुपण किये जाने पर ही उत्तरप्रकृतियोंकी प्ररुपणा बन सकती है।

वह प्रकृतिसमुत्कीर्तन किस प्रकार है ? ॥४॥

शंका -- यह पृच्छासूत्र किसलिए कहते हैं ?

समाधान -- सूत्र-कर्ताकी प्रमाणताके प्ररुपणद्वारा सूत्रकी प्रमाणता का निरुपण करने के लिए यह पृच्छा-सूत्र कहा है।

ज्ञानावरणीय कर्म है ॥५॥

ज्ञान, अवबोध, अवगम और परिच्छेद,ये सब एकार्थ -वाचक नाम है। उस ज्ञानको जो आवरण करता है, वह ज्ञानावरणीय कर्म है।

शंका 'ज्ञानावरण' नामके स्थानपर 'ज्ञान-विनाशक ऐसा नाम क्यों' नहीं कहा ?

समाधान --नहीं, क्योंकि, जीवके लक्षणस्वरूप ज्ञान और दर्शनका विनाश नहीं होता है। यदि ज्ञान और दर्शनका विनाश हो जाय, तो जीवका भी विनाश हो जायगा, क्योंकि , लक्षणसे रहित लक्ष्य पाया नहीं जाता है।

शंका --ज्ञानका विनाश नहीं होनेपर सभी जीवोंके ज्ञानका अस्तित्व प्राप्त होता है ?

चूलियाए पगडिसभुक्कित्तणे णाणावरणीयं

'अक्खरस्स अणंतभाओ णिच्चुगघाडियओ (हवदि हु सव्वजहण्णं णिच्चुगघाडं णिरावरणं। गो . जी. ३२०) 'इदि सुत्ताणुकूलत्तादो वा। ण सव्वाब-यवेहि णाणस्सुवलंभो होदु त्ति वोत्तुं जुत्तं, आवरिदणाणभागांणमुवलंभविरोहा। आवरिदणाणभागा सावरणे जीवे किमत्थि आहों णत्थि ति। जदि अत्थि, ण ते आवरिदा , सव्वप्पणा संताणमावरिदतविरोहा । अह णत्थि,तो वि णावरणं, आवरिज्जमाणाणमभावे आवरणस्सत्थित्तविरोहा इदि ? एत्थ परिहारो उच्चदे -दव्वट्ठयणए अवलंबिज्जमाणे आवरिदणाणभागा सावरणे वि जीवे अत्थि, जीवदव्वादो पुधभूदणाणाभावा,

विज्जमाणणाणभागादो आवरिदणाणभागाणंमभेदादो-वा । आवरिदाणावरिदाणं कधमेगतमिदि चे
? ण, राहु-मेहेहि आवरिदाणावरिदसु

समाधान --ज्ञानका विनाश नहीं होनेपर यदि सर्व जीवोंके ज्ञानका अस्तित्व प्राप्त होता है, तो होने दो, उसमें कोई विरोध नहीं है । अथवा 'अक्षरका अनन्तवां भाग ज्ञान नित्य-उध्दाटिन अर्थात आवरणरहित रहता है' इस सूत्रके अनुकूल होनेसे सर्व जीवोंके ज्ञानका अस्तित्व सिद्ध है।

शंका--यदि सर्व जीवोंके ज्ञानका अस्तित्व सिद्ध है, तो फिर सर्व अवयवोंके साथ ज्ञानका उपलम्भ होना चाहिए ? अर्थात ज्ञानके सभी भागोंका या पूर्ण ज्ञानका सद्भाव पाया जाना चाहिए ?

समाधान --यह कहना उपयुक्त नहीं , क्योंकि , आवरण किये गये ज्ञानके भागोंका उपलम्भ होनेमें विरोध आता है।

शंका--आवरणयुक्त जीवमें आवरण किये गये ज्ञानके भाग क्या है, अथवा नहीं है ? यदि है, तो वे आवरित नहीं कहे जा सकते, क्योंकि , सम्पूर्णरूपसे विद्यमान भागोंके आवरण माननेमें विरोध आता है। यदि नहीं है, तो उनका आवरण नहीं माना जा सकता, क्योंकि, आव्रियमाण अर्थात आवरण किये जाने योग्य ज्ञानके अभावमें आवरणके अस्तित्वका विरोध है ?

समाधान --यहां आशंकाका परिहार करते हैं- द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बन करनेपर आवरण किये गये ज्ञानके अंश सावरण जीवमें भी होते हैं, क्योंकि , जीवद्रव्यसे पृथग्भूत ज्ञानका अभाव है, अथवा विद्यमान ज्ञानके अंशसे आवरण किये गये ज्ञानके अंशोका कोई भेद नहीं है।

शंका --ज्ञानके आवरण किए गए और आवरण नहीं किए गए अंशोंकी एकता कैसे हो सकती है ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, राहु और मेघोंके द्वारा सूर्यमंडल और चन्द्रमंडलके

छक्खंडागमे जीवट्ठाणं

ज्जिंदुमंडलभागाणमेगत्तुलंभा । एवं संते आवरिज्जावारयभावो जुज्जदे, अण्णहा तस्सा-
णुवलंभप्पसंगादो । पज्जवट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे आवरिज्जमाणणाण भागा णत्थि, तेसिं
तदुवलंभाभावा। ण च एदं सुत्तं पज्जवट्ठियणयमवलंबिय ट्ठिदं, तदावरिज्जमाणा-
वारयववहाराभावा। किंतु दव्वट्ठियणयमवलंबिय सुत्तमिदमवट्ठिदं, तेणेत्थ आवरिज्जमाणा-
वारयभावो ण विरुज्जदे। किमट्ठं णाणंमावरिज्जमाणमिदि ? उच्चदे -अप्पणोविरोहि-
दव्वसण्णिहाणे संते वि जं णिम्मूलदो ण विणस्सदि तमावरिज्जमाणं, इदंर चावारयं ण च णाणस्स
विरोहिकम्मदव्वसण्णिहाणे संते णिम्मूलविणासो अत्थि, जीवविणासप्पसंगा। तदो
णाणमावरिज्जमाणं, कम्मदव्वं चावारयमिदि उत्तांकधं पोग्गलेण जीवादो पुध भूदेण जीवलक्खणं
णाणं विणासिज्जदि ? ण एस दोसो, जीवादो पुधभूदाणं धड-पड त्थंभंधयारादीणं
जीवलक्खणणाणविणासयाणमुवलंभा । णाणावारओ पोग्गलक्खंधो

पवाह आवरित और अनावरित भागोंके एकता पाई जाती है।

इस प्रकार उक्त व्यवस्थाके होनेपर आत्रियमाण और आवारकभाव बन जाता है, अर्थात
ज्ञान तो आवरण करने योग्य और कर्म-पुद्गल आवरण करनेवाले सिद्ध हो जाते हैं। यदि उक्त
व्यवस्था न मानी जायगी तो उसके अनुपलम्बका प्रसंग प्राप्त होगा । किन्तु पर्यायार्थिकनयका
अवलम्बन करने पर आत्रियमाण ज्ञान-भाग सावरण जीव में नहीं होते हैं, क्योंकि , वे ज्ञान -भाग
उक्त जीवमें नहीं पाये जाते।

दूसरी बात यह है कि यह सूत्र पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करके स्थित नहीं है, क्योंकि ,
उसमें आत्रियमाण और आवारक, इन दोनोंके व्यवहारका अभाव है । किन्तु यह सूत्र
द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करके अवस्थित है , इसलिए यहांपर आत्रियमाण और आवारकभाव
विरोधको प्राप्त नहीं होता है ।

शंका--ज्ञानको आत्रियमाण किस लिए कहा है ?

समाधान --अपने विरोधी द्रव्यके सन्निधान अर्थात सामीप्य होनेपर भी जो निर्मूलतः
विनष्ट नहीं होता है, उसे आत्रियमाण कहते हैं, और दुसरे अर्थात आवरण करनेवाले विरोधी

द्रव्यको आवारक कहते हैं। चूं कि विरोधी कर्मद्रव्यके सन्निधान होनेपर ज्ञानका निर्मूल विनाश नहीं होता है, क्योंकि, वैसा माननेपर जीवके विनाशका प्रसंग आता है। इसलिए ज्ञान तो आव्रियमाणै है और कर्मद्रव्य आवारक है, ऐसा कहा गया है।

शंका--जीवद्रव्यसे पृथग्भूत पुद्गलद्रव्यके द्वारा जीवका लक्षणभूत ज्ञान कैसे विनष्ट किया जाता है ?

समाधान --यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि , जीवद्रव्यसे पृथग्भूत घट, पट ,स्तम्भ और अंधकार आदिक पदार्थ जीवके लक्षणस्वरूप ज्ञानके विनाशक पाये जाते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि ज्ञानका आवरण करनेवाला और प्रवाहस्वरूपसे

चूलियाए पगडिसमुक्किक्तणे देसणावरणीयं

सरुवेण अणाइबंधणबद्धो णाणावरणीयमिदि भण्णदे।

दंसणावरणीयं ॥६॥

अप्पविसओ उवजोगो दंसणं । ण णाणभेदं, तस्स बज्झट्ठविसत्तादो। ण च बज्झ
तरंगविसयाणमेयत्तं, विरोहा । ण च णाणमेंव दुसत्तिसहियं, पज्जयस्स पज्जयाभावा ।

णाण-दंसणलक्खणो जीवो त्ति तदो इच्छिदव्वो । एदं च दंसणमावरिज्जं (अभावप्पसगो मु.)
विरोहिदव्व सण्णिहाणे संते वि एदस्स णिम्मूलदो विणासाभावा। भावे वा जीवस्स वि विणासो
पसज्जदे, लक्खणविचणासे लक्खणविणासे लक्खस्सावड्ढाणविरोहा । ण च णाण -दंसणाणं
जीवलक्खण त्तमसिद्धं, दोण्हमभावे जीवदव्वस्सेव अभावप्पसंगा । होदु चे ण, पमाणाभावे पमेयाणं
सेसदव्वाणं पि अभावावत्तीदो । उत्तं च

एक्को मे सस्सदो अप्पा णाण -दंसणलक्खणो।

सेसा दु बाहिरा (सेसा दु बाहिरा (बहिरा मु.)भावा सव्वे संजोगलक्खणा (
भावपा.गा. ५९. मूलाचा . २ ,४८)॥१॥

अनादि -बंधन बद्ध पुद्गल स्कन्ध ज्ञानावरणीय कर्म कहलाता है ।

दर्शनावरणीय कर्म है॥६॥

आत्म-विषयक उपयोगको दर्शन कहते हैं। यह दर्शन ज्ञानरूप नहीं है, क्योंकि, ज्ञान बाह्य अर्थोंको विषय करता हैं। तथा बाह्य और अन्तरंग विषय को करनेवाले ज्ञान और दर्शनकी एकता नहीं है , क्योंकि , वैसा माननेमें विरोध आता है । और ज्ञानको ही दो शक्तियोंसे युक्त नहीं माना जा सकता है , क्योंकि ,पर्यायकेअन्य पर्यायका अभाव माना गया है । इसलिए ज्ञान-दर्शनलक्षणात्मक जीव मानना चाहिए। यह दर्शन आवरण करनेके योग्य है, क्योंकि विरोधी द्रव्यके सन्निधान होने पर भी इसका निर्मूल रूपसे विनाश नहीं होता है । यदि दर्शनगुणका निर्मूल विनाश होने लगे, तो जीवके भी विनाशका प्रसंग प्राप्त होता है, क्योंकि लक्षणके विनाश होने पर लक्ष्यके अवस्थानका विरोध है ।

दूसरी बात यह हैं कि ज्ञान और दर्शनके जीवका लक्षणत्व असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, दोनोंके अर्थात ज्ञान और दर्शनके अभाव होने पर जीवद्रव्यका ही अभाव प्राप्त होता है।

शंका --यदि ज्ञान और दर्शनके अभाव होनेपर जीवद्रव्यका ही अभाव प्राप्त होता है, तो होने दो ?

समाधान --नहीं , क्योंकि, (स्व-परव्यवसायात्मक) प्रमाणकेअभावमे प्रमेय स्वरूप शेष द्रव्योंके भी अभावकी आपत्ति आती है। कहा भी है

ज्ञान-दर्शनलक्षणात्मक मेंरा आत्मा एक है, शाश्वत (नित्य) है । शेष सर्व संयोग लक्षणात्मक भाव बाहरी है ॥१॥

छक्खंडागमे जीवट्टाणं

असरीरा जीवघणा उवजुत्ता दंसणे य णाणे य ।

सायारमणायारं लकखणमेयं तु सिध्दाणं (स.सि.८,४.,त.रा.वा.८,४.) ॥२॥

एदं दंसणमावारेदि ति दंसणावरणी यां जो पोग्गलक्खंधो मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगेहि कम्मसरुवेण परिणदो जीवसमवेदो दंसणगुणपडिबंधओ सो दसणा-वरणीयमिदि घेत्तव्वो। वेदणीयं ॥७॥

वेदयत इति वेदनीयम् (वेदयति वेदयत इति वा वेदनीयम् । स. सि. ८;४. त. रा. वा.८,४. अक्खापां अणुभवं वेयणियं सुहसरुवयं सादं । दुक्खसरुवमसादं तं वेदयदीदि वेदणियं । गो. क.१४)

एदीए उप्पत्तीए सब्बकम्माणं वेदणीयत्तं पसज्जदे ? ण एस दोसो, रुढिवसेण कुसलसद्दो व्व अप्पिदपोग्गलपुंजे चेव वेदणीयसद्दप्पउत्तीदो अथवा वेदयतीति वेदनीयम्। जीवस्स सुह दुक्खाणुहवणणिबंधणो पोग्गलक्खंधो मिच्छत्तादिपच्चयवसेण कम्मपज्जयपरिणदो जीवसमवेदो वेदणीयमिदि भण्णदे।

जो अशरीर है, जो जीव होकर प्रदेशोंकी अपेक्षा धनरूप है , ज्ञान और दर्शनमें उपयुक्त है, वे सिद्ध है। इस प्रकार साकार और अनाकार, यह सिद्धोंका लक्षण है ॥२॥

इस प्रकारके दर्शनगुणको जो आवरण करता है , वह दर्शनावरणीय कर्म है। अर्थात् जो पुद्गल स्कन्ध - मिथ्यात्व असंयम, कषाय और योगोंके द्वारा कर्मस्वरूपसे परिणत होकर जीवके साथ एक क्षेत्रावगाहरूपसे समवेत है और दर्शनगुणका प्रतिबन्ध करनेवाला है, वह दर्शनावरणीय कर्म है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

वेदनीयकर्म है ॥७॥

जो वेदन अर्थात् अनुभवन किया जाता है, वह वेदनीय कर्म है।

शंका--इस प्रकारकी व्युत्पत्तिके दारा तो सभी कर्मोंके वेदनीयपनेका प्रसंग प्राप्त होता है?

समाधान --यह कोई दोष नहीं है , क्योंकि , रुढिके वशसे कुशलशब्दके समान विवक्षित पुद्गल-पुंजमें ही 'वेदनीय' इस शब्दकी प्रवृत्ति पाई जाती है । अर्थात् जिस प्रकार कुशल शब्दका व्युत्पत्त्यर्थ कुशके लानेवाला होने पर भी वेदनीयसंज्ञा एक कर्मविशेषके लिए रुढ है।

अथवा, जो वेदन कराता है, वह वेदनीय कर्म है। जीवके सुख और दुःखके अनुभवनका कारण, मिथ्यात्व आदि प्रत्ययोंके वशसे कर्मरूप पर्यायसे परिणत और जीवके साथ एक क्षेत्रावगाहरूप सम्बन्धको प्राप्त पुद्गल-स्कन्ध 'वेदनीय' इस नामसे कहा जाता है ।

चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणं मोहनीयं

तस्सत्थित्तं कुदोवगम्मदे ? सुखदुक्ख कज्जण्णहाणुववत्तीदो। ण कज्जं कारणणिरवेक्ख-
मुप्पज्जदे, अण्णत्थ तहाणुवलंभा। ण जीवो दुक्खसहावो, जीवलक्खणणाण _दंसणविरोहि-
दुक्खस्स जीवहावत्तविरोहा । मोहणीयं ॥८॥

मुह्यत इति मोहणीयम (मोहयति मुह्यतेऽनेनेति वा मोहनीयम । स. सि. ८ , ४.;त. रा.
वा. ८, ४,)

एवं संते जीवस्स मोहणीयत्तं पसज्जदि त्ति णासंकण्णिज्जं, जीवादो अभिण्णम्हि पोग्गलदव्वे
कम्मसण्णिदे उवयारेण कत्तारत्तमारोविय तथा उत्तीदो । अथवा मोहयतीति मोहनीयम। एवं संते
धत्तूर (धुत्तूर ता २।) सुरा- कलत्तादीणं पि मोहणीयत्तं पसज्जदीदि चे ?ण, कम्मदव्वमोहणीये एत्थ
(मोहणीयेण एत्थ ता.२) अहियारादो। ण कम्माहियारे धत्तूर- सुरा- कलत्तादीणं संभवो (संभवो
ता.२) अत्थि। किं कम्म ? पोग्गलदव्वं जदि एवं, तो सव्वपोग्गलाणं

शंका - उस वेदनीयकर्मका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान -- सुख और दुःखरूप कार्य अन्यथा हो नहीं सकते हैं, इस अन्यथानुपपत्तिसे
वेदनीयकर्मका अस्तित्व जाना जाता है। और कारणसे निरपेक्ष कार्य उत्पन्न होता नहीं क्योंकि,
अन्यत्र उस प्रकार देखा नहीं जाता है।

जीव दुःखस्वभावी नहीं हैं, क्योंकि जीवके लक्षणस्वरूप ज्ञान और दर्शनके विरोधी
दुःखका जीवका स्वभाव होनेमें विरोध आता है।

मोहनीय कर्म है ॥८॥

जो मोहित किया जाता है वह मोहनीय कर्म है।

शंका - इस प्रकारकी व्युत्पत्ति करनेपर जीवके मोहनीय कर्मपना प्राप्त होता है?

समाधान-ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि, जीवसे अभिन्न और कर्म ऐसी संज्ञ
पावाले पुद्गलद्रव्यमें उपचारसे कर्तृत्वका आरोपण करके उस प्रकारकी व्युत्पत्ति की गई है।

अथवा, जो मोहित करता है, वह मोहनीय कर्म है।

शंका - ऐसी व्युत्पत्ति करनेपर धतूरा, मदिरा और भार्या आदिके भी मोहनीयता प्रसक्त होती है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, यहां पर मोहनीयनामक द्रव्यकर्मका अधिकार है, अतएव कर्मके अधिकारमें धतूरा, मदिरा और स्त्री आदिको मोहनीय कर्म मानना सम्भव नहीं है ।

शंका - कर्म क्या वस्तु है?

समाधान - कर्म पुद्गल द्रव्य है।

१ मोहयति मुह्यातेऽनेनेति वा मोहनीयमा। स.सि. ८.४. ; त.रा.वा. ८, ४,

२ धुत्तूर ता. २। ३ मोहणीयेण एत्थ ता. २। ४ संभावो ता. २।

छक्खंडागमे जीवद्वाणं

कम्मतं पसज्जदे? ण मिच्छतादिपच्चएहि जीवे संबध्दाणं जाइ-जरा-मरणादिकज्जकरणे समत्थाणं पोग्गलणं कम्मत्तब्भुवगमादो। उतं च ---

जीवपरिणामहेदू कम्मतं पोग्गला परिणमंति ।

ण य णाणपरिणदो पुण जीवो कम्मं समादियदि ॥३॥

जारिसओ परिणामो तारिसओ चेव कम्मबंधो वि ।

वत्थूसु विसम-समसण्णिदेसु अज्झप्पजोएण ॥४॥

मिच्छतादिपच्चएहि कोह-माण-माया-लोहादिकज्जकारित्तेण परिणदा पोग्गला जीवेण सह संबध्दा मोहणीयसण्णिदा होंति त्ति जं उतं होदि।

आउअं ॥९॥

एति भवधारणं प्रति इत्यायुः। जे पोग्गला मिच्छतादिकारणेहि णिरयादिभव-धारणसत्तिपरिणदा जीवणिविटठा ते आउअसण्णिदा होंति। तस्स आउअस्स अत्थित्तं

शंका - यदि ऐसा है तो सभी पुद्गलोंके कर्मपना प्रसक्त होता है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, मिथ्यात्व आदि बन्ध-कारणोकेद्वारा जीवमें सम्बन्धको प्राप्त-तथा जन्म, जरा और मरण आदि कार्योंके करनेमें समर्थ पुद्गलोंके कर्मपना माना गया है। कहा भी है

--- जीवके रागादि परिणामोंके निमित्तसे पुद्गल कर्मरूप परिणत होते हैं। किन्तु ज्ञान, परिणत जीव कर्मको नहीं प्राप्त होता है ॥३॥

विषम और सम संज्ञावाली अर्थात् अनिष्ट और इष्ट वस्तुओंमें आत्मसम्बन्धी अध्यात्म-योगसे मिथ्यात्व आदिके निमित्तसे जिस प्रकारका परिणाम होता है, कर्म-बन्ध उसी प्रकारका होता है ॥४॥

मिथ्यात्व आदि बंध - कारणोंके द्वारा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कार्य करनेकी शक्तिसे परिणत हुए पुद्गल जीवके साथ सम्बन्धको प्राप्त होकर मोहनीय संज्ञावाले हो जाते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

आयुर्कर्म है ॥९॥

जो भव-धारणके प्रति जाता है, वह आयुर्कर्म है। जो पुद्गल मिथ्यात्व आदि बंध-कारणोंके द्वारा नरक आदि भव-धारण करनेकी शक्तिसे परिणत होकर जीवमें निविष्ट होते हैं, वे 'आयु' इस संज्ञावाले होते हैं।

शंका - उस आयुर्कर्मका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

१ स. प्रा. गा. ८१।

एत्यनेन नारकादिभवमित्यायुः। स.सि. ८, ४, ; त.रा.वा. ८, ४ कम्मकयमोहवडिढ्यसंसारमिह य
अणदिजुत्तमिह। जीवस्स अवट्ठाणं करेदि आऊ हलि व्व णरं॥ गो. क. १२

१, ९-१, १२.) चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे णाम-गोदंतरायं

कुदोवगम्मदे ? देहटिठदिअण्णहाणुवत्तीदो।

णामं ॥१०॥

नाना मिणोति निर्वर्त्तयतीति नाम (१ नमयत्यात्मानं नम्यतेऽनेनेति वा नाम। स. सि. ८,४, ;
त. रा. वा. ८,४. गदि आदिजीवभेद देहादीपोग्गलाणभेद चा गदियंतरपरिणमणंकरेदि णामं
अणेयविहं॥ गो. क. १२.)

जे पोग्गला सरीर - संटाण - संघडण - वण्ण -गंधादिकज्जकारया जीवणिविटठा ते णामसण्णिदा होंति ति उत्तं होदि। तस्स णाम- कम्मस्स अत्थित्तं कुदोवगम्मदे ? सरीर - संटाण वण्णादिकज्जभेदण्णहाणुववत्तीदो।

गोदं॥ ११॥

गमयत्युच्च - नीचकुलमिति गोत्रम् (२ उच्चैर्नीच च गूयते शब्दयत इति वा गोत्रम्। स.सि. ८, ४,; त.रा. वा. ८, ४ संताणकमेणागयजीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा। उच्च णीचं चरणं उच्चं णीचं हवे गोर्दा गो. क. १३.)

उच्च-णीचकुलेसु उप्पादओ पोग्गलक्खंधो मिछत्तादिपच्चएहि जीवसंबद्धो गोदमिदि उच्चदे।

अंतरायं चेदिं ॥ १२॥

अन्तरमेति गच्छति द्वयोः इत्यन्तरायः (३ दातृदेयादीनामन्तरं मध्यमेतीत्यन्तरायः। स.सि. ८, ४,; त.रा. वा. ८, ४.)। दाण लाह-भोगोवभोगादिसु विग्घ इ

समाधान-देहकी स्थिति अन्यथा हो नहीं सकती है, इस अन्यथानुपपत्तिसे आयुर्कर्मका अस्तित्व जाना जाता है।

नाम कर्म है ॥१०॥

जो नाना प्रकारकी रचना निष्पन्न करता है, वह नामकर्म है। शरीर, संस्थान, संहनन, वर्ण, गंध आदि कार्योंके करनेवाले जो पुद्गल जीवमें निविष्ट हैं, वे 'नाम' संज्ञावाले होते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका - उस नामकर्मका अस्तित्व कैसे जाना जाता है?

समाधान -- शरीर, संस्थान, बर्ण आदि कार्योंके भेद अन्यथा हो नहीं सकते हैं, इस अन्यथानुपपत्तिसे नामकर्मका अस्तित्व जाना जाता है।

गोत्र कर्म है ॥११॥

जो उच्च और नीच कुलको ले जाता है वह गोत्रकर्म है। मिथ्यात्व आदि बंधनकारणोंके द्वारा जीवके साथ सम्बन्धको प्राप्त, एवं उच्च और नीच कुलोमें उत्पन्न करानेवाला पुद्गल-स्कन्ध गोत्र इस नामसे कहा जाता है।

अन्तराय कर्म है ॥१२॥

जो दो पदार्थोंके अन्तर अर्थात मध्यमें आता है, वय अन्तराय कर्म है। दान, लाभ भोग और उपभोग-आदिकोंमें विघ्न करनेमें समर्थ तथा अपने -कारणोंकेद्वारा जीवके

छक्खंडागमे जीवट्ठाणं (१, ९-१, १३

करणक्खमो पोग्गलक्खंधो सकारणेहि जीवसमवेदो अंतरायमिदि भण्णदे। एत्तियाओ चेव मूलपयडीओ होंति ति जाणावणटठमिदि सददो पउत्तो। एत्थ उववुज्जंतओ सिलोगो-हेतावेवम्प्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये।

प्रादुर्भावे समाप्तौ च इतिशब्दं विदुर्बुधाः (१ धतं अनेकार्यनाममाला ३९.)॥५॥

तदो अट्ठेव मूलपयडीओ । तं कुदो णव्वदे? अटठ-कम्मजणिदकज्जेहिंतो पुधभूद-कज्जस्स अणुवलंभादो । एदाहि अट्ठहि पयडीहि अणंताणंतपरमाणुसमुदयसमागमेणु-प्पण्णाहि एगेगजीवपदेसम्मि संबध्दाणंतपरमाणूहि (२ पदेसंबंधाणंतपरमाणूहि ता. १) अणादिसरुवेण संबध्दो अमुत्तो विमुत्तत्तमुवगओ आइध्दकुलालचक्कंव सत्तसु संसारेसु जीवो संसरदि ति घेत्तव्वं।

मेहाविजीवाणुग्गहट्ठं संगहणयमवलंबिय पयडिसमुक्कित्तणं कारुण संपहि मंद-बुद्धिजणाणुग्गहट्ठं ववहारणयपज्जयपरिणदो आइरियो उवरिमसुत्तं भणदि --

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ (३ पंच य पयडीओ ता. १-२।)॥१३॥

साथ सम्बन्धको प्राप्त हुआ पुद्गल-स्कन्ध 'अन्तराय' इस नामसे कहा जाता है। मूलप्रकृतियां इतनी अर्थात आठ ही होती हैं, इस बातके ज्ञान करानेके लिए सूत्र में 'इति' यह शब्द प्रयुक्त किया गया है। इस विषयमें यह उपयुक्त श्लोक है-

हेतु, एवं, प्रकार-आदि, व्यवच्छेद, विपर्यय, प्रादुर्भाव और समाप्तिके अर्थमें इति शब्दको विद्वानोंने कहा है ॥५॥

इसलिए मूलप्रकृतियां आठ ही हैं।

शंका -- यह कैसे जाना जाता कि मूलप्रकृतियां आठ ही है ?

समाधान -- आठ कर्मोंके द्वारा उत्पन्न होनेवाले कार्योसे पृथग्भूत कार्य पाया नहीं जाता, इससे जाना जाता है कि मूलप्रकृतियां आठ ही हैं।

अनन्तानन्त परमाणुओंके समुदायके समागमसे उत्पन्न हुई इन आठ प्रकृतियोंके द्वारा एक एक जीव-प्रदेशपर सम्बन्ध अनन्त परमाणुओंके द्वारा अनादिस्वरूपसे सम्बन्धको प्राप्त अमूर्त भी यह जीव मूर्तत्वको प्राप्त होता हुआ आविर्ध-कुलाल-चक्रके समान, अर्थात् प्रयोग-प्रेरित कुम्भकारके चक्रके तुल्य, द्रव्यपरिवर्तनादि सात प्रकारके संसारोंमें संसरण या भ्रमण करता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

मेधावी जीवोंके अनुग्रहार्थ संग्रहनयका अवलंबन ले प्रकृतिसमुत्कीर्तन करके अब मन्द-बुद्धि जनोंका अनुग्रह करनेके लिए व्यवहारनयरूप पर्यायसे परिणत आचार्य उत्तर सूत्र कहते हैं - ज्ञानावरणीय कर्मकी पांच उत्तर प्रकृतियां है ॥१३॥

१, ९-१, १४.) चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे णाणावरणीय - उत्तरपयडीओ आभिणिबोहियणाणावरणीयं सुदणाणावरणीयं ओहिणाणा-वरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि ॥१४॥

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ (१ पंच य पयडीओ ता.१) ति एदं ण वत्तवं पंचण्हं पयडीणं पुध पुध (२ पुधणाम-मु.) णामणिददेंसेणेव णाणावरणीयस्स पयडिपंचयत्तवगमादो (३ पंचक्तभुवगमादो मु.) ? ण एस दोसो, दव्वट्ठयसिस्साणुग्गहट्ठं णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ ति पदुप्पायणादो। एवं दोसो होज्ज, जदि दोण्णि वि सुत्ताणि (४ सुधत्ताणि ता. १)। एयणयणिबंधणाणि किंत्तु पुव्विल्लं दव्वट्ठयसिस्साणुग्गहकारि, पच्छिल्लं पि पज्जवट्ठयणयसिस्साणुग्गहकारि। तदो दो वि सुत्ताणि सहलाणि ति।

अहिमुह-णियमियअत्थावबोहो आभिणिबोहो
(५अहिमुहणियमियबोहणयमाभिणिबोहियमणिंदिइंदियजं। अवगहईहावाया धारगंगा होंति पत्तेगं गो.जो. ३०५.)। थूल-वट्टमाण-अणंतरिदअत्था अहिमुहा। चक्खिंदिए रुवं णियमिदं, सोदिंदिए सद्दो, घाणिंदिए गंधो, जिभिंदिए रसो, फासिंदिए फासो, णोइंदिए दिट्ठ-सुदाणुभूदत्था णियमिदा। अहिमुह-णियमिदट्ठेसु

वे पांच प्रकृतियां इस प्रकार हैं -- आभिनिवोधिकज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय ॥१४॥

शंका- 'ज्ञानावरणीय कर्मकी पांच प्रकृतियां होती है' इस प्रकारका सूत्र नहीं कहना चाहिए, क्योंकि, पांचों प्रकृतियोंके पृथक नाम-निर्देशके द्वारा ही इस बातका ज्ञान हो जाता है कि ज्ञानावरणीयकर्मकी प्रकृतियां पांच होती ही है ?

समाधान - यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिकनयावलम्बी शिष्योंके अनुग्रहके लिए 'ज्ञानावरणीय कर्मकी पांच प्रकृतियां होती है' इस प्रकारका सूत्र निर्माण किया गया है। यदि ये दोनों ही सूत्र एक नयके आश्रित होते, तो उक्त प्रकारका यह दोष होता । किन्तु, पहला सूत्र द्रव्यार्थिकनयी शिष्योंका अनुग्रह करनेवाला है, और पिछला सूत्र पर्यायार्थिकनयी शिष्योंका अनुग्रह करनेवाला है। इसलिए ये दोनों ही सूत्र सफल अर्थात् सार्थक है।

अभिमुख और नियमित अर्थके अवबोधको अभिनिबोध कहते हैं। स्थूल, वर्तमान और अनन्तरित अर्थात् व्यवधान-रहित अर्थोंको अभिमुख कहते हैं। चक्षुरिन्द्रियमें रूप नियमित है, श्रोत्रेन्द्रियमें शब्द, घ्राणेन्द्रियमें गन्ध, जिह्वेन्द्रियमें रस, स्पर्शनेन्द्रियमें स्पर्श और नोड्द्रिय अर्थात् मनमे दृष्ट, श्रुत और अनुभूत पदार्थ नियमित हैं। इस

छक्खंडागमे जीवट्टाणं (१, ९-१, १४.

जो बोधो सो आहिणिबोधो। आहिणिबोध एव अहिणिबोधियणाणं १(अत्थाभिमुहो निअओ बोहो जो सो मओ अभिणिबोहो । सो चेवाऽऽभिणिबोहिअमहव जहाजोग्गमाउज्जं ।। तं तेण तओ तम्मि व सो वाऽभिणिबुज्झए तओ वा तं । वि . आ. भा. ८०-८१) एत्थ णाणं विसेसिज्जमाणं, तस्स सामण्णरुवतादो। आहिणिबोहियं विसेसणं, अण्णेहिंतो ववच्छेद-कारित्तादो। तेण ण पुणरुत्तदोसो दुक्कदे।

तं च आहिणिबोहियणाणं चउव्विहं (१ अत्थाभिमुहो निअओ बोहो जो सो मओ अभिणिवोहो। सो चेवाऽऽभिणिबोहिअमहव जहाजोग्गमाउज्जं। तं तेण तओ तम्मि व सो वाऽभिणिबुज्झए तओ वा तं। वि.आ.भा. ८०-८१.) अवग्गहो ईहा अवाओ धारणा चेदि (२ स. अक्षार्थयोगे सत्तालोकोऽर्थाकारविकल्पधीः। अवग्रहो विशेषाकांक्षेहाऽवायो विनित्रयः। धारणास्मृतिहेतुस्तन्मतिज्ञानं चतुर्विधम् । लघीय.का. ५-६.)। विषय-विषयिसंपातानन्तरमाद्यं ग्रहणमवग्रहः (३ स.सि. १, १५, त.रा.वा. १, १५ लघीय. स्वो वि., पृ. २ पं. २ १.

अक्षार्थयोगजाद्वस्तु-मात्रग्रहणलक्षणात् । जातं यद्वस्तुभेदस्य ग्रहणं तदवग्रहः॥ त. त्र्लो. वा. १, १५,२०.)। विसओ बाहिरो अट्ठो, विसई इंदियाणि (४ विषयस्तावत द्रव्यपर्यायात्मार्थः विषयिणोद्रव्यभावेन्द्रियस्य । लघीय. स्वो.वि., पृ. २ पं. २१-२२)। तेसिं दोण्हं पि संपादो णाम णाणजणणजोग्गावत्था, तदणंतरमुप्पणं णाणमवग्गहो। सो वि अवग्गहो दुविहो, अत्थावग्गहो वंजणावग्गहो चेदि (५ वेंजणअत्थअवग्गहभेदा हु हवंति पत्तपत्तत्थे। कमसो ते वावरिदा पढमं ण हि चक्खुमणसाणं ॥ गो.जी. ३०६)। तत्थ अप्पत्तत्थग्गहण-मत्थावग्गहो, जधा चक्खिंदिएण । पत्तत्थग्गहणं वंजणावग्गहो, जधा फस्सिंदिएण ।

प्रकारके अभिमुख और नियमित पदार्थोंमें जो बोध होता है, वह अभिनिबोध है। अभिनिबोध ही आभिनिबोधिक ज्ञान कहलाता है। यहांपर 'ज्ञान' यह विशेष्य पद है, क्योंकि, वह सामान्यरूप है। 'आभिनिबोधिक' यह विशेषण पद है, क्योंकि, वह अन्य ज्ञानोंसे व्यवच्छेद करता है। इसलिए दोनो पदोंके देनेपर भी पुनरुक्त दोष नहीं आता है।

वह अभिनिबोधिक ज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाके भेदसे चार प्रकारका है। विषय और विषयीके योग्य देशमे प्राप्त होनेके अनन्तर आद्य ग्रहणको अवग्रह कहते हैं। बाहरी पदार्थ विषय है, और इन्द्रियां विषयी कहलाती है। इन दोनोंकी ज्ञान उत्पन्न करनेके योग्य अवस्थाका नाम संपात है। विषय और विषयीके संपातके अनन्तर उत्पन्न होनेवाला ज्ञान अवग्रह कहलाता है। वह अवग्रह भी दो प्रकारका है- अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह । उनमें अप्राप्त अर्थात् अस्पृष्ट अर्थके ग्रहण करनेको अर्थावग्रह कहते हैं, जैसे चक्षुरिन्द्रियके द्वारा रूपको ग्रहण करना । प्राप्त अर्थात् स्पृष्ट अर्थके ग्रहणको व्यंजनावग्रह कहते हैं, जैसे स्पर्शनेन्द्रियके द्वारा स्पर्शको ग्रहण १, ९-१, १४.)

चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे आभिणिबोहियणाणावरणीयं

अवगृहीतस्यार्थस्य विशेषाकांक्षणमीहा (१ स. सि. १, १५, त. रा. वा. १, १५, तदगृहीतार्थसामान्ये यद्विशेषस्य कांक्षणम । निश्चयाभिमुखं सेहा संशीतेर्भिन्नलक्षणा ॥ त. श्लो. वा. १, १५, ३.)। जो अवग्रहेण गहिदो अत्थो, तस्स विसेसा-कंक्खणमीहा। जधा कं पि दट्ठूण किमेसो भव्वो अभव्वो ति

विसेसपरिक्खा सा ईहा (३ विसयाणं विसईणं संजोगाणंतर हवे णियमा । अवगहणाणं गहिदे विसेसकंखा हवे ईहा ॥गो.जी. ३०७.)। णेहा संदेहरुवा, विचारबुद्धीदो संदेहविणासुवलंभा । संदेहादो उवरिमा, अवायादो ओरिमा, विच्वाले पवुत्ता (४ पयत्ता मु.) विचारबुद्धी ईहा णाम । वितर्क श्रुतम इति वचनादीहा वियक्करुवत्तादो सुदणाणमिदि चे ? ण एस दोसो, ओग्गहेण पडिग्गहिदत्थालंबणो वियक्को ईहा, भिण्णत्थालंबणो वियक्को सुदणाणमिदि अब्भुवगमादो ।

ईहितस्यार्थस्य संदेहापोहनमवायः। पुवं किं भव्वा, किमेसो अभव्वा ति जो संदेहबुद्धीए विसईकओ जीवो सो एसो अभव्वा ण होदि, भव्वा चेय; भव्वत्ताविणाभाविसम्मण्णाण-सम्मददंसण-चरणणमुवलंभादो, इदि उप्पण्णपच्चओ अवाओ णाम ।

करना । अवग्रहसे ग्रहण किये गये अर्थके विशेष जाननेकी आकांक्षा ईहा है । अर्थात् अवग्रहके द्वारा जो पदार्थ ग्रहण किया गया है, उसकी विशेष जिज्ञासाको ईहा कहते हैं। जैसे -किसी पुरुषको देखकर क्या यह भव्य है, अथवा क्या यह अभव्य है, इस प्रकारकी विशेष परीक्षा करनेको ईहाज्ञान कहते हैं। ईहाज्ञान संदेहरूप नहीं है, क्योंकि, ईहात्मक विचार-बुद्धिसे संदेहका विनाश पाया जाता है। संदेहसे उपरितन, अवायज्ञानसे अधस्तन, तथा अन्तरालमें प्रवृत्त होनेवाली विचार-बुद्धिका नाम ईहा है।

शंका - 'विशेषरूपसे तर्क करना श्रुतज्ञान है' इस शास्त्र-वचनके अनुसार ईहा वितर्करूप होनेसे श्रुतज्ञान है।

समाधान --यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, अवग्रहसे प्रतिगृहीत अर्थके आलम्बन करनेवाले वितर्कको ईहा कहते हैं और भिन्न अर्थका आलम्बन करनेवाला वितर्क श्रुतज्ञान है, ऐसा अर्थ स्वीकार किया गया है।

ईहाज्ञानसे जाने गये पदार्थ-विषयक संदेहका दूर हो जाना अवाय है । पहले ईहाज्ञानसे 'क्या यह भव्य है, अथवा अभव्य है' इस प्रकार जो संदेहरूप बुद्धिके द्वारा विषय किया गया जीव है सो यह अभव्य नहीं है, भव्य ही है, क्योंकि उसमें भव्यत्वके अविनाभावी सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, और सम्यकचारित्र गुण पाये जाते हैं, इस प्रकारसे उत्पन्न हुए विश्वस्त ज्ञानका नाम अवाय है।

५ त. सू. ९, ४३,

६ विशेषनिर्ज्ञानाद्याथात्स्यावगमनमवायः स. सि. १, १५. त. रा. वा. १५, ३ तस्यैव
निर्णयोऽवायः। त. श्लो. वा. १, १५, ४.

छक्खंडागमे जीवट्ठाणं

(१, ९-१, १४.

लिंगजत्तादो अवायो सुदणाणमिदि णासंकणिज्जं, अवग्गहिदत्थादो पुधभूदत्थालंबणाए
लिंगजणिदबुद्धीए णिण्णयरुवाए सुदणाणत्तब्भुवगमादो। अवाओ पुण अवग्गहिदत्थ-विसओ
ईहापच्छायदो, तेण सुदणाणं ण होदि। अवग्गहावायाणं णिण्णयत्तं पडि भेदाभावा एयत्तं किण्ण होदि
इदि चे, होदु तेण एयत्तं, किंतु अवग्गहो णाम विसय-विसइसण्णिवायाणंतरभावी पढमो
बोधविसेसो, अवाओ पुण ईहाणंतरकालभावी उप्पण्ण-संदेहाभावरुवो, तेण ण दोण्हमेयत्तं।
निर्णीतस्यार्थस्य कालान्तरे अविस्मृतिर्धारणा (१ अवेतस्य कालान्तरेऽविस्मरणकारणं। स. सि. १,
१५, निर्ज्ञातार्थाऽविस्मृतिर्धारणा। त. रा. वा. १, १५, ४. स्मृतिहेतुः सा धारणा। त. श्लो. वा. १, १५,
४.)। जतो णाणादो कालतरे वि अविस्सरणहेदुभूदो जीवे संसकारो उप्पज्जदि, तण्णाणं धारणा
णामा ण च ओग्गहादि-चउण्हं पि णाणाणं सव्वत्थ कमेण उत्पत्ती, तहाणुवलंभा। तदो कहिं पि
ओग्गहो चये, कहिं पि ओग्गहो ईहा य दो च्येय (२ तदो कहिं पि ओग्गहो चये। कहिं नि ओग्गहो
धारणा य दो च्येय कहिं पि ओग्गहो ईहा य 'इति पाठः। अन्यप्रतिषु तदो कहिं पि ओग्गहो धारणा
य दो च्येय। कहिं पि ओग्गहो ईहा य' ता. २), कहिं पि ओग्गहो ईहा अवाओ तिण्णि वि होंति,

शंका -- लिंगसे उत्पन्न होनेके कारण अवाय श्रुतज्ञान है ?

समाधान -- ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, अवग्रहके द्वारा ग्रहण किये गये
पदार्थसे पृथग्भूत अर्थका आलम्बन करनेवाली, निर्णयरूप लिंग-जनित बुद्धिको श्रुतज्ञानपना
माना गया है। किन्तु अवायज्ञान अवग्रहसे गृहीत पदार्थको ही विषय करता है और ईहाज्ञानके
पश्चात् उत्पन्न होता है, इसलिए वह श्रुतज्ञान नहीं हो सकता है।

शंका -- अवग्रह और अवाय, इन दोनो ज्ञानोंके निर्णयत्वके सम्बन्धमें कोई भेद न होनेसे
एकता क्यों नहीं है?

समाधान -- निर्णयत्वके सम्बन्धमें कोई भेद न होनेसे एकता भले ही रही आवे, किन्तु विषय और विषयीके सन्निपातके अनन्तर उत्पन्न होनेवाला प्रथम ज्ञानविशेष अवग्रह है, और ईहाके अनन्तर-कालमें उत्पन्न होनेवाले संदेहके अभावरूप अतायज्ञान होता है, इसलिए अवग्रह और अवाय, इन दोनों ज्ञानोंमें एकता नहीं है।

अवायज्ञानसे निर्णय किये गये पदार्थका कालान्तरमें विस्मरण न होना धारणा है। जिस ज्ञानसे कालान्तर अर्थात् आगामी कालमें भी अविस्मरणका कारणभूत संस्कार जीवमें उत्पन्न होता है उस ज्ञानका नाम धारणा है। अवग्रह आदि चारों ही ज्ञानोंकी सर्वत्र क्रमसे उत्पत्ति नहीं होती है, क्योंकि, उस प्रकारकी व्यवस्था पाई नहीं जाती है। इसलिए कहीं तो केवल अवग्रह ज्ञान ही होता है कहीं अवग्रह और ईहा ये दो ही ज्ञान होते हैं :कहींपर अवग्रह, ईहा और अवाय, ये तीनों भी ज्ञान होते हैं, १, ९-१, १४.)

चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे आभिणिबोहियणाणावरणीयं

कहिं पि ओग्गहो ईहा अवाओ धारणा चेदि चत्तारि वि होंति ।

तत्र बहु बहुविध-क्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवसेतरभेदेनैकैको द्वादशविधः (१ बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ त. सू. १, १६. द्वादशघः ता.१।) । तत्थ बहूणमेगवारेण ग्गहणं बहुअवग्गहो। ण च एसो अप्पसिद्धो, अक्कमेण जोग्गदेसट्ठिद पंचण्हमंगुलीणमुवलंभा। एकस्सेवउवलंमो (२ वत्थुवलंभो मु.) एयावग्गहो। अणेयंतवत्थुवलंभा एयावग्गहो णत्थि। अह अत्थि, एयंतसिद्धी पसज्जदे एयंतग्गाहयपमाणस्सुवलंभा इदि चे, ण एस दोसो, एयवत्थुग्गाहओ अवबोहो एयावग्गहो उच्चदि । ण च विहि-पडिसेह-धम्माणं वत्थुत्तमत्थि जेण तत्थ अणेयावग्गहो होज्ज । किंतु विहि-पडिसेहारध्दमेयं वत्थू, तस्स उवलंभो एयावग्गहो। अणेयवत्थुविसओ अवबोहो अणेयावग्गहो । पडिहासो पुण सव्वो अणेयंतविसओ चेय, विहि-पडिसेहाणमण्णदरस्सेव अणुवलंभा। बहुपयाराणं

और कहीं पर अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा, ये चारों ही ज्ञान होते हैं।

उनमें एक एक, अर्थात् अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा-बहु, बहुविध, क्षिप्र अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव और इनके प्रतिपक्षी अर्थात् एक, एकविध अक्षिप्र, निःसृत, उक्त और अध्रुव, इनके भेदसे बारह प्रकारका है। उनमें बहुत वस्तुओंका एक साथ ग्रहण करना बहुअवग्रह है। इस प्रकारका यह बहु-अवग्रह अप्रसिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, योग्य देशमें स्थित पांचो अंगुलियोंका एक साथ उपलम्भ पाया जाता है। एक ही वस्तुके उपलम्भको एक-अवग्रह कहते हैं।

शंका -- अनेक धर्मात्मक वस्तुओंके पाये जानेसे एक -अवग्रह नहीं होता है। यदि होता है तो एक धर्मात्मक वस्तुकी सिद्धि प्राप्त होती है, क्योंकि, एक धर्मात्मक वस्तुका ग्रहण करनेवाला प्रमाण पाया जाता है?

समाधान--यह कोई दोष नहीं, क्योंकि एक वस्तुका ग्रहण करनेवाला ज्ञान एक-अवग्रह कहलाता है। तथा विधि और प्रतिषेध धर्मोंके वस्तुपना नहीं है, जिससे उनमें अनेक अवग्रह हो सके। किन्तु विधि और प्रतिषेध धर्मोंके समुदायात्मक एक वस्तु होती है उस प्रकारकी वस्तुके उपलम्भको एक-अवग्रह कहते हैं। अनेक वस्तु-विषयक ज्ञानको अनेक-अवग्रह कहते हैं। किन्तु प्रतिभास तो सर्व ही अनेक धर्मोंका विषय करनेवाला होता है, क्योंकि, विधि और प्रतिषेध, इन दोनोमेंसे किसी एक ही धर्मका अनुपलम्भ है, अर्थात् इन दोनोंमेंसे एकको छोड़कर दूसरा नहीं पाया जाता, दोनों ही प्रधान-अप्रधानरूपसे साथ साथ पाये जाते हैं। १, ९-१, १४.)

छक्खंडागमे जीवटठाणं

हय-हत्थि-गो-महिसादीणं गहणं बहुविहावग्गहो। एयपयारग्गहणमेयविहावग्गहो (१ बहु-बहुविधयोः कः प्रतिविशेषः ? यावता बहुषु बहुविधेष्वपि बहुत्वमस्ति। एकप्रकार -नानाप्रकारकृतो विशेषः। स.सि. १, १६.)। एय-एयविहाणं को विसेसो ? उच्चदे --एगस्स गहणं एयावग्गहो, एगजाईए, टिट्ठद-एयस्स बहूणं वा गहणमेयविहावग्गहो। आसुग्गहणं खिप्पावग्गहो, सणिग्गहणमखिप्पावग्गहो। अहिमुहअत्थग्गहणं णिसियावग्गहो, अणहिमुहअत्थग्गहणं अणिसियावग्गहो। अहवा उवमाणोवमेयभावेण गहणं णिसियावग्गहो, जहा कमलदलणयणेत्ति (२ पाणिंदिएण ता. १।)।तेण विणा गहणं अणिसियावग्गहो णियमियगुणविसिट्ठअत्थग्गहणं उतावग्गहो। जधा चक्खिंदिएण धवलत्थग्गहणं, घाणिंदिएण सुअंधदव्वग्गहणमिच्चादि।

अणियमियगुण विसिट्टदव्वग्गहणमउत्तावग्गहो, जहा चक्खिंदिएण गुडादीणं रसस्स ग्गहणं, घाणिंदिएण (३ घादिंदिएण ता. १।) दहियादीणं रसग्गहणमिच्चादि। णायमणिरिसदस्स अंतो पददि, एयवत्थुग्गहणकाले चेय तदो पुधभूदवत्थुस्स, ओवरिमभागग्गहणकाले चेय परभागस्स य, अंगुलिगहणकाले

बहुत प्रकारके अश्व, हस्ती, गौ और महिष आदि पदार्थोंका ग्रहण करना बहुविध अवग्रह है। एक प्रकारके पदार्थका ग्रहण करना एकविध-अवग्रह है।

शंका -- एक और एकविधमें क्या भेद है?

समाधान -- एक व्यक्तिरूप पदार्थका ग्रहण करना एक-अवग्रह है ; और एक जातिमें स्थित एक पदार्थका, अथवा बहुत पदार्थोंका ग्रहण करना एकविध-अवग्रह है।

आशु अर्थात् शीघ्रतापूर्वक वस्तुको ग्रहण करना क्षिप्र-अवग्रह है, और शनैः शनैः ग्रहण करना अक्षिप्र-अवग्रह है। अभिमुख अर्थका ग्रहण करना निःसृत-अवग्रह है। और अनभिमुख अर्थका ग्रहण करना अनिःसृत अवग्रह है। अथवा, उपमान-उपमेय भावके द्वारा ग्रहण करना निःसृत अवग्रह है, जैसे - कमलदल नयना अर्थात् इस स्त्रीके नयन कमलपत्रके समान है। उपमान-उपमेय भावकेविना ग्रहण करना अनिःसृतअवग्रह है। नियमित गुण-विशिष्ट अर्थका ग्रहण करना उक्त-अवग्रह है। जैसे -- चक्षुरिन्द्रियकेद्वारा धवल पदार्थका ग्रहण करना और घ्राणेन्द्रियके द्वारा सुगन्ध द्रव्यका ग्रहण करना, इत्यादि। अनियमित गुण-विशिष्ट द्रव्यका ग्रहण करना अनुक्तअवग्रह है। जैसे चक्षुरिन्द्रियकेद्वारा गुड आदिकेरसका ग्रहण करना, और घ्राणेन्द्रियकेद्वारा दही आदिकेरसका ग्रहण करना। यह अनुक्त-अवग्रह अनिःसृत-अवग्रहके अन्तर्गत नहीं है, क्योंकि एक वस्तुके ग्रहण - कालमें ही, उससे पृथग्भूत वस्तुका, उपरिम-भागके ग्रहण-कालमें ही परभागका और अंगुलिके ग्रहण-कालमें ही देवदत्तका ग्रहण करना अनिःसृत-अवग्रह

१, ९-१, १४)

चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे सुदणाणावरणीयं

चेय देवदत्तस्स य गहणस्स अणिरिसदववदेसादो। णिच्चत्ताए गहणं धुवावग्गहो, तव्विवरीयगहणमध्दुवावग्गहो। एवमीहादीणं पि बारस भेदा परुवेदव्वा। चक्खिंदियणोइंदियाणं

अटटेतालीस आभिणिबोधियणाणवियप्पा होंति, एदेसिं वंजणावग्गहाभावा। सेसिंदियाणं सट्ठी मदिणाणवियप्पा, तत्थ अत्थ-वंजणोग्गहाणं दोण्हं पि संभवादो। एवंविधस्स णाणस्स जमावरणं तमाभिणिबोहियणाणावरणीयं।

सुदणाणस्स आवरणीयं सुदणाणावरणीयं। तत्थ सुदणाणं णाम इंदिएहि गहिदत्थादो तदो पुधभूदत्थग्गहणं, जहा सद्दादो घडादीणमुवलंभो, धूमादो अग्गिस्सुवलंभो वा (१ अत्थादो अत्थंतरमुवलंभं तं भणंति सुदणाणं। आभिणिबोहियपुव्वं णियमेणिह सद्दजं पमुहांगो.जी. ३१४.)। तं च सुदणाणं वीसदिविधं। तं जधा - पज्जाओ पज्जायसमासो अक्खरंअक्खरसमासो पदं पदसमासो संघाओ संघायसमासो पडिवत्ती पडिवत्तिसमासो अणियोगो अणियोगसमासो पाहुडपाहुडो पाहुडपाहुडसमासो पाहुडो पाहुडसमासो वत्थू वत्थुसमासो पुव्वं पुव्वसमासो चेदि (२ पज्जायक्खरपदसंवादं पडिवत्तियाणिजोगं चा दुगवारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थु पुव्वं चा तेसिं च समासेहि य वीसविहं वा हु होदि सुदणाणं। आवरणस्स वि भेदा तत्तिथमेत्ता हवंति तिा गो.जी. ३१६-३१७)। खरणाभावा अक्खरं केवलणाणं। तस्स अणंतिम-

माना गया है। नित्यतासे अर्थात् निरन्तर रूपसे ग्रहण करना ध्रुव - अवग्रह है और उससे विपरीत ग्रहण करना अध्रुव -अवग्रह है।

इस प्रकार ईहा आदि शेष तीन ज्ञानोंके भी बारह भेद निरूपण करना चाहिए। चक्षुरिन्द्रिय और नो-इन्द्रिय अर्थात् मनके अडतालिस आभिनिबोधिक ज्ञानसम्बन्धी विकल्प होते हैं, क्योंकि, चक्षु और मन, इन दोनोंके व्यंजनावग्रहका अभाव है। शेष चारों इन्द्रियोंके साठ मतिज्ञान-सम्बन्धी भेद होते हैं, क्योंकि, उनमें अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह, इन दोनोंका भी होना संभव है।

इस प्रकारके ज्ञानका जो आवरण करता है उसे अभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

श्रुतज्ञानके आवरण करनेवाले कर्मको श्रुतज्ञानावरणीय कहते हैं। उनमें इन्द्रियोंसे ग्रहण किये गये पदार्थसे उससे पृथग्भूत पदार्थका ग्रहण करना श्रुतज्ञान है। जैसे -- शब्दसे घट आदि पदार्थोंका जानना, अथवा धूमसे अग्निका ग्रहण करना। वह श्रुतज्ञान वीस प्रकारका है। जैसे - पर्याय, पर्याय-समास, अक्षर, अक्षर-समास, पद, पद-समास, संघात, संघात-समास, प्रतिपत्ति,

प्रतिपत्ति-समास, अनुयोग, अनुयोग-समास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृत-समास, प्राभृत, प्राभृत-समास, वस्तु, वस्तु-समास, पूर्व और पूर्व-समास ।

क्षरण अर्थात् विनाशके अभाव होनेसे केवलज्ञान अक्षर कहलाता है। उसका

छक्खंडागमे जीवट्ठाणं (१, ९-१, १४.)

भागो पज्जाओ णाम मदिणाणं। तं च केवलणाणं व णिरावरणमक्खरं चा एदम्हादो सुहुमणिगोदलद्धिअक्खरादो जमुप्पज्जइ सुदणाण (१ सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि। हवदि हु सव्वजहण्णं णिच्चुग्घाडं णिरावरणं ॥३१९॥ XXX फासिंदियमदिपुव्वं सुदणाणं लद्धिअक्खरयां ३२१ गो.जी.) तं पि पज्जाओ उच्चदि, कज्जे कारणो-वयारादो। तदो अणंतभागवद्धी सुदणाणं पज्जयसमासो उच्चइ । अणंतभागवद्धी असंखेज्जभागवद्धी संखेज्जभागवद्धी संखेज्जगुणवद्धी असंखेज्जगुणवद्धी अणंतगुणवद्धी ति एसा एक्का छवद्धी। एरिसाओ असंखेज्जलोगमेत्तीओ छवद्धीओ गंतूण पज्जायसमास-सुदणाणस्स अपच्छिमो वियप्पो होदि। तमणंतेहि रुवेहि गुणिदे अक्खरं णाम सुदणाणं होदि (२ अवरुवरिम्मि अणंतमसंखं संखंच भागवद्धीए । संखमसंखमंगंतं गुणवद्धी होंति हु कमेण ॥३२२॥ एवं असंखलोगा अणक्खरण्णे हवंति छट्ठाणा। ते पज्जायसमासा अक्खरगं उवरि वोच्छामि ३३१ चरिमुव्वं-केणवहिदअत्थक्खरगुणिदचरिमुव्वं अत्थक्खरं तु णाणं होदि ति जिणेहि णिदिदट्ठं ३३२ गो.जी.)। कधमेदस्स अक्खरववएसो ? ण, दव्वसुदपडिबध्देयक्खरुप्पण्णस्स उवयारेण अक्खरववएसोदो ? एदस्सुवरि अक्खरवद्धी चेव होदि, अवराओ वद्धीओ णत्थि ति आइरियपरंपरागदुवदेसादो। केहं पुण आइरिया अक्खरसुदणाणं पि छव्विहाए वद्धीए वद्धदि ति भणंति, णेदं घडदे, सयल-सुदणाणस्स संखेज्जदिभागादो अक्खरणाणादो

अनन्तवां भाग पर्याय नामका मतिज्ञान है। वह पर्याय नामका मतिज्ञान केवलज्ञानके समान निरावरण और अविनाशी है। इस सूक्ष्म -निगोद-लद्धि-अक्षरसे जो श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है वह भी कार्य में कारणके उपचारसे पर्याय कहलाता है। इस पर्याय श्रुतज्ञानसे जो अनन्तवें भागसे अधिक श्रुतज्ञान होता है वह पर्याय-समास कहलाता है अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि, इन छहों वृद्धियोंके

समुदायात्मक यह एक षड्वृद्धि होती है। इस प्रकारकी असंख्यात लोकप्रमाण षड्वृद्धियां ऊपर जाकर पर्याय-समास-नामक श्रुतज्ञानका अन्तिम विकल्प होता है। उस अन्तिम विकल्पको अनन्त रूपोंसे गुणित करने पर अक्षर-नामक श्रुतज्ञान होता है।

शंका -- उक्त प्रकारके इस श्रुतज्ञानकी 'अक्षर' ऐसी संज्ञा कैसे हुई ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, द्रव्यश्रुत-प्रतिबद्ध एक अक्षरसे उत्पन्नज्ञानकी उत्पत्तिकी उपचारसे 'अक्षर' ऐसी संज्ञा है।

इस अक्षर श्रुतज्ञानके ऊपर एक एक अक्षरकी ही वृद्धि होती है, अन्य वृद्धियां नहीं होती हैं। इस प्रकार आचार्य-परम्परागत उपदेश पाया जाता है। कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि अक्षर-श्रुतज्ञान भी छह प्रकारकी वृद्धिसे बढ़ता है। किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, समस्त श्रुतज्ञानके संख्यातवें भागरूप अक्षर- ज्ञानसे

१, ९-१, १४.) चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे सुदणाणावरणीयं

उवरि छव्ढ्डीणं संभवाभावा । अक्खरसुदणाणादो उवरिमाणं पदसुदणाणादो हेट्ठिमाणं संखेज्जाणं सुदणाणवियप्पाणमक्खरसमासो ति सण्णा । तदो एगक्खरणाणे वड्ढिडे पदणाम सुदणाणं होदि (१ एयक्खरादु उवरि एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो । संखेज्जे खलु उड्ढे पदणामं होदि सुदणाणं गो.जी. ३३४.)। कुदो एदस्स पदसण्णा ? सोलहसयचोत्तीसकोडीओ तेसीदिलक्खा अट्ठहत्तरिसदअट्ठासीदिअक्खरे च घेत्तूण एगं दव्वसुदपदं (२ सोलससयचउत्तीसा कोडी तियसीदिलक्खयं चेव । सत्तसहस्साट्ठसया अट्ठासीदी य पदवण्णा गो. जी. ३३५॥) होदि। एदेहितो उप्पण्णभावसुदं पि उवयारेण पदं ति उच्चदि। एदस्स पदस्स सुदणाणस्सुवरि एगक्खरसुदणाणे वड्ढिडे पदसमासो णाम सुदणाणं होदि । एवमेगक्खरादिकमेण पदसमाससुदणाणं वड्ढमाणं गच्छदि जाव संघाओ ति। संखेज्जेहि पदेहि संघाओ णाम सुदणाणं होदि। चउहि गईहि मग्गणा होदि (३ एयपदादो उवरि एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो । संखेज्जसहस्सपदे उड्ढे संघादणाम सुदं ॥गो.जी. ३३६.)। तत्थ णिरयगईए जत्तिएहि पदेहि एगपुढवी परुविज्जदि, तत्तियाणं पदाणं तेहितो उप्पण्णसुदणाणस्स य संघायसण्णा ति उत्तं होदि । एवं सब्वगईओ

सव्वमग्गणाओ च अस्सिदूण वत्तव्वं । एदस्सुवरि अक्खरसुदणाणे वड्ढिदे संघायसमासो (संघायसमसो ता.२।) णाम सुदणाणं होदि । एवं संघायसमासो वड्ढमाणो गच्छदि जाव एयअक्खरसुदणाणे-

ऊपर छह प्रकारकी वृद्धियोंका होना संभव नहीं है।

अक्षर-श्रुतज्ञानसे उपरिम और पद-श्रुतज्ञानसे अधस्तन श्रुतज्ञानके संख्यात विकल्पोंकी 'अक्षरसमास' यह संज्ञा है। इस अक्षरसमास श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरज्ञानके बढनेपर पदनामका श्रुतज्ञान होता है।

शंका -- उक्त प्रकारके इस श्रुतज्ञानकी 'पद' यह संज्ञा कैसे है ?

समाधान -- सोलह सौ चौतीस करोड, तेरासी लाख, अठत्तर सौ अठासी

(१६३४८३०७८८८) अक्षरोंको लेकर द्रव्यश्रुतका एक पद होता है। इन अक्षरोंसे उत्पन्न हुआ भावश्रुत भी उपचारसे 'पद' ऐसा कहा जाता है। इस पद नामक श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षर-प्रमित श्रुतज्ञानके बढनेपर पद-सामास नामक श्रुतज्ञान होता है। इस प्रकार एक एक अक्षर आदिके क्रमसे पद-समास नामका श्रुतज्ञान बढता हुआ तब तक जाता है जब तक कि संघात नामका श्रुतज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार संख्यात पदोंके द्वारा संघात नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। चारों गतियोंके द्वारा मार्गणा होती है। उनमें जितने पदोंके द्वारा नरकगतिकी एक पृथ्वी निरूपित की जाती है उतने पदोंकी और उनसे उत्पन्न हुए श्रुतज्ञानकी 'संघात' ऐसी संज्ञा होती है। इसी प्रकार सर्व गतियोंका और सर्व मार्गणाओंका आश्रय करके कहना चाहिए। इस संघात श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षर-प्रमित, श्रुतज्ञानके बढनेपर संघात-समास नामक श्रुतज्ञान होता है। इस प्रकार संघात-समास नामक श्रुतज्ञान तब तक

छक्खंडागमे जीवट्टाणं (१, ९-१, १४.

णूणपडिवत्तिसुदणाणेत्ति। जत्तिएहि पदेहि एयगइ-इंद्रिय-काय-जोगादओ परुविज्जंति, तेसिं

पडिवत्तीसण्णा

(१ एककदरगदिणिरुवयसंघादसुदादु उवरि पुवं वा। वण्णे संखेज्जे संघादे उड्ढम्मि पडिवत्ती ॥ गो.जी. ३३७.)। पडिवत्तीए उवरि एगक्खरसुदणाणे वड्ढिदे पडिवत्तिसमासो णाम सुदणाणं होदि। एवं पडिवत्तिसमासो चेव होदूण गच्छिदि जाव एगक्खरेणूणअणियोगद्दारसुदणाणेत्ति । जत्तिएहि पदेहि चोदसमग्गणाणं पडिवध्देहि जो अत्थो जाणिज्जदितेसिं पदाणं तत्थुप्पण्णणाणस्स य अणिओगो त्ति सण्णा (२ चउगइसरुवरुवयपडिवत्तीदो दु उवरि पुवं वा । वण्णे संखेज्जे पडिवत्तीउड्ढम्मि अणियोगां गो.जी. ३३८.)। तस्सुवरि एगक्खरसुदणाणे वड्ढिदे अणियोगसमासो होदि । एवमणियोगसमाससुदणाण एगेगक्खरुत्तरवड्ढीए वड्ढमाणं गच्छिदि जाव एगक्खरेणूणपाहुडपाहुडेत्ति । तस्सुवरि एगक्खरसुदणाणे वड्ढिदे पाहुड-पाहुडं होदि । संखेज्जेहि अणियोगसुदणाणेहि एगं पाहुडपाहुडं णाम सुदणाणं होदि (३ चोदसमग्गणसंजुदअणियोगादुवरि वड्ढिदे वण्णे। चउरादी अणियोगे दुगवारं पाहुडं होदि ॥ अहियारो पाहुडयं एयट्ठो पाहुडस्स अहियारो । पाहुडपाहुडणामं होदि त्ति जिणेहिं णिदिदट्ठं ॥ ३३९-३४०)। तस्सुवरि एगक्खरवड्ढिदे पाहुडपाहुडसमासो होदि । दस्सुवरि एगक्खरादिवड्ढिकमेण

बढता हुआ जाता है जब तक कि एक अक्षरश्रुतज्ञानसे कम प्रतिपत्ति नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है। जितने पदोंके द्वारा एक गति, इन्द्रिय, काय और योग आदि मार्गणा प्ररुपित की जाती है, उतने पदोंकी प्रतिपत्ति यह संज्ञा है। प्रतिपत्ति नामक श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षर-प्रमाण श्रुतज्ञानके बढनेपर प्रतिपत्तिसमास नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। इस प्रकार प्रतिपत्ति-समास श्रुतज्ञान ही बढता हुआ तब तक चला जाता है, जब तक कि एक अक्षरसे कम अनुयोगद्वार नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है। चौदह मार्गणाओंसे प्रतिबध्द जितने पदोंके द्वारा जो अर्थ जाना जाता है, उतने पदोंकी और उनसे उत्पन्न हुए श्रुतज्ञानकी अनुयोग यह संज्ञा है। उस अनुयोग श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरप्रमाण श्रुतज्ञानके बढनेपर अनुयोग-समास नामक श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार अनुयोगसमास नामक श्रुतज्ञान के बढनेपर अनुयोग-समास नामक श्रुतज्ञान होता है। इस प्रकार अनुयोगसमास नामक श्रुतज्ञान एक एक अक्षरकी उत्तर-वृद्धिसे बढता हुआ तब तक जाता है जब तक कि एक अक्षरसे कम प्राभृत-प्राभृत नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है। उसके ऊपर एक अक्षर प्रमाण श्रुतज्ञानके बढनेपर प्राभृत-प्राभृत नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। संख्यात अनुयोगद्वाररूप श्रुतज्ञानोंके द्वारा एक प्राभृतप्राभृत नामक श्रुतज्ञान होता है। उस प्राभृतप्राभृत

श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षर-प्रमाण श्रुतज्ञान के बढनेपर प्राभृतप्राभृत समास नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है।

१, ९-१, १४.) चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे ओहिणाणावरणीयं
पाहुडपाहुडसमासो गच्छदि जावेगक्खरेणूणपाहुडेत्ति। तस्सुवरि एगक्खरे वडिडदे पाहुडो होदि (१
दुगवारपाहुडादो उवरिं वण्णे कमेण चउवीसे। दुगवारपाहुडे संउढडे खलु होदि पाहुडयं ॥ गो.
जी. ३४१.)। एदस्सुवरि एगक्ख रे वडिडदे पाहुडसमासो होदि । एवमेगेगक्खरेवडिडकमेण
पाहुडसमासो गच्छदि जाव एगक्खरेणूणवीसदिमपाहुडो (२ वीसदियपाहुडो मु.।) ति। एदस्सुवरि
एगक्खरे वडिडदे वत्थुसुदणाणं होदि (३ वीसं वीसं पाहुड अहियारे एक्कवत्थुअहियारो।
एक्केक्कवण्णउढडी कमेण सव्वत्थ णायव्वांगो.जी. ३४२.)। तस्सुवरि एगक्खरे वडिडदे
वत्थुसमासो होदि। एवं वत्थुसमासो गच्छदि जाव एगक्खरेणूणअंतिमवत्थु ति। एदस्सुवरि एगक्खरे
वडिडदे पुव्वं णाम सुदणाणं होदि। तस्सुवरि एगक्खरे वडिडदे पुव्वसमासो होदि। एवं पुव्वसमासो
गच्छदि जाव लोगबिंदुसारचरिमक्खरं ति । एदस्स सुदणाणस्स आवरणं सुदणाणावरणीयं।

अवाग्धानादवधिः, अवधिश्च स ज्ञानं च तत अवधिज्ञानमा अथवा अवधिर्मर्यादा, अवधिज्ञानमवधिज्ञानम्
(४ अवाग्धानादवच्छिन्नविषयाद्वा अवधिः। स. सि. १, ९. अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमाद्युभयहेतु-सन्निधाने सत्यवधीयतेऽवाग्धात्यवाग्धानमात्रं वावधिः। स. सि. १,
९. अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमाद्युभयहेतु - सन्निधाने सत्यवधीयतेऽवाग्धात्यवाग्धानमात्रं
वावधिः। अवधिश्चोऽधःपर्यायवचनः, यथाधः क्षेपणमवक्षेपणं, इत्यधोगतभूयोद्रव्यविषयी ह्यवधिः।
अथवावधिर्मर्यादा, अवधिना प्रतिबद्धं ज्ञानमवधिज्ञानमा त. रा. वा. १, ९ ;
अवध्यावृत्तिविध्वंसविशेषादवधीयते। येन स्वार्थोऽवधानं वा सोऽवधिर्नियता स्थितिः॥ त. त्रलो. १,
९, ५.) । तं च ओहिणाणं तिविहं, देसोही परमोही सव्वोही चेदि ।

इसके ऊपर एक अक्षर आदिकी वृद्धिके क्रमसे प्राभृतप्राभृत समास तब तक बढता हुआ जाता है, जब तक कि एक अक्षरसे कम प्राभृत नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है । उस प्राभृत श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरके बढनेपर प्राभृत-समास नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। इस प्रकार एक एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे प्राभृतसमास नामक श्रुतज्ञान तब तक बढता हुआ जाता है जब तक कि

एक अक्षरसे कम वीसवां प्राभृत प्राप्त होता है । इस वीसवें प्राभृतके ऊपर एक अक्षर-प्रमाण श्रुतज्ञानके बढनेपर वस्तु नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है । उस वस्तु श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर वस्तु-समास नामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। इस प्रकार वस्तु समास नामक श्रुतज्ञान तब तक बढता हुआ जाता है जब तक कि एक अक्षरसे कम अन्तिम वस्तु नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है । इस अन्तिम वस्तु श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर पूर्वनामक श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। उस पूर्वनामक श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर पूर्वसमास नामक श्रुतज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार पूर्व-समास श्रुतज्ञान बढता हुआ तब तक जाता है, जब तक कि लोक बिन्दुसार नामक चौदहवें पूर्वका अन्तिम अक्षर उत्पन्न होता है। इस प्रकारके श्रुतज्ञानका आवरण करने वाला कर्म श्रुतज्ञानावरणीय कहलाता है।

जो नीचेकी ओर प्रवृत्त हो, उसे अवधि कहते है। अवधिरूप जो ज्ञान होता है वह अवधिज्ञान कहलाता है। अथवा अवधि नाम मर्यादाका है, इसलिए द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा विषय-सम्बन्धी मर्यादाके ज्ञानको अवधिज्ञान कहते हैं।

छकखंडागमे जीवट्टाणं (१, ९-१, १४.

एदेसिं सरुवपरुवणमुवरि कस्सामो। मदि-सुदणाणेहिंतो एदस्स सावहियत्तेण भेदाभावा पुधपरुवणं णिरत्थयमिदि चे, ण एस दोसो, मदि-सुदणाणाणि परोक्खाणि, ओहिणाणं पुण पच्चक्खं; तेण तेहिंतो तस्स भेदुवलंभा। मदिणाणं पि पच्चक्खं दिस्सदीदि चे ? ण, मदिणाणेण पच्चक्खं वत्थुस्स अणुवलंभा। जो पच्चक्खमुवलब्भइ, सो वत्थुस्स एगदेसो त्ति वत्थु ण होदि। जो वि वत्थु (१ वत्था ता. १) सो वि ण पच्चखेण उवलब्भदि, तस्स पच्चक्खापरोक्खमइणाणविसयत्तादो (२ प्रत्यक्षं विशदं ज्ञानं त्रिधा XXX इन्द्रियप्रत्यक्षम अनिन्द्रियप्रत्यक्षम अतीन्द्रियप्रत्यक्षम। प्रमाणसं, पृ. ९७ प्रत्यक्षलक्षणं प्राहु : स्पष्टं साकारमज्जसा। द्रव्यपर्यायसामान्यविशेषार्थात्मवेदनम ॥३॥ हिताहिताप्ति-निर्मुक्तिक्षममिन्द्रियनिर्मितम। यद्देशतोऽर्थज्ञानं तदिन्द्रियाध्यक्षमुच्यते ॥४॥ सदसज्जानसंवादविसंवादविवेकतः। सविकल्पाविनाभावी समक्षेतरसम्प्लवः॥५॥ लक्षणं सममेतावान विशेषोऽशेषगोचरम ॥१६८॥ अक्रमं करणा-तीतमकलंकं महीयसाम ॥१६८ १/२॥)। (कथं तर्हि मतिज्ञानस्थैवं अवग्रहादिभेदस्य प्रत्यक्षत्वमुक्तं आत्ममात्रापेक्षत्वा-दिति चेदत्राह -) केवलं

लोकबुध्दयैव मतेर्लक्षणसंग्रहः ॥४७४ १/२॥ न्यायविनिश्चय पृ. ९३ इन्द्रियार्थज्ञानं) । तदो
मदिणाणं पच्चक्खेण ण वत्थुपरिच्छेदयं।

वह अवधिज्ञानं देशावधि, परमावधि और सर्वावधिके भेदसे तीन प्रकारका है इन तीनों भेदोंके
स्वरूपका निरूपण आगे करेंगे ।

शंका --अवधि अर्थात् मर्यादा-सहित होनेकी अपेक्षा अवधिज्ञानका मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, इन दोनोंसे कोई भेद नहीं है; इसलिए इसका पृथक निरूपण करना निरर्थक है ?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष ज्ञान है। किन्तु
अवधिज्ञान तो प्रत्यक्ष ज्ञान है । इसलिए उक्त दोनों ज्ञानोंसे अवधिज्ञानके भेद पाया जाता है।

शंका -- मतिज्ञान भी तो प्रत्यक्ष दिखलाई देता है ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, मतिज्ञानसे वस्तुका प्रत्यक्ष उपलम्भ नहीं होता है। मतिज्ञानसे
जो प्रत्यक्ष जाना जाता है वह वस्तुका एकदेश है ; और वस्तुका एकदेश सम्पूर्ण वस्तुरूप नहीं हो
सकता है। जो भी वस्तु है वह भी मतिज्ञानके द्वारा प्रत्यक्षरूपसे नहीं जानी जाती है, क्योंकि वह
प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षरूप परोक्ष मतिज्ञानका विषय है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि मतिज्ञान
प्रत्यक्षरूपसे वस्तुका जाननेवाला नहीं है।

अवहीयदि त्ति ओही सीमाणाणेत्ति वणिणयं समये। गो.जी. ३६९. अवायन्ति ब्रजन्तीत्यवायाः
पुद्गला; तान दधाति जानतित्यवधिः। अवाग्धानात्पुद्गलपरिज्ञानादित्यर्थः।
द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्नियतत्वेनावधीयते नियम्यते प्रमीयते परिच्छद्यत इत्यर्थः । अवधानं अवधिः।
कोऽर्थः? अधस्ताद्बहुतरविषयग्रहणादवधिरुच्यते। देवाःखलु अवधिज्ञानेन सप्तमनरकपर्यन्तं
पश्यन्ति। उवरि स्तोत्रं पश्यन्ति निजविमानध्वजदंडपर्यन्तमित्यर्थः। स. सि. टी. पृ. ६९.
तेणावहीयए तम्मि वाऽवहाणं तओऽवही सो या मज्जाया जं तीए दव्वाइ परोप्परं मुणर्जा वि. आ.
भा. ८२.

जदि एवं, तो ओहिणाणस्स वि पच्चक्ख - परोक्खत्तं पसज्जदे, तिकालगोयराणंतपज्जाएहि उवचियं (१ मप्रतौ 'उपरिय' इति पाठः।) वत्थू, ओहिणाणस्स पच्चक्खेण तारिसवत्थुपरिच्छेदणसत्तीए अभावादो इदि चे? ण, ओहिणाणम्मि पच्चक्खेण वट्टमाणासेसपज्जायविसिट्ठवत्थुपरिच्छितीए उवलंभा, तीदाणागद - असंखेज्जपज्जायविसिट्ठवत्थुदंसणादो चा एवं पि तदो वत्थुपरिच्छेदो णत्थि त्ति ओहिणाणस्स पच्चक्ख-परोक्खत्तं पसज्जदे ? ण, उभयणयसमूहवत्थुम्मि ववहारजोगम्मि ओहिणाणस्स पच्चक्खत्तुवलंभा। ण चाणंतवंजणपज्जाए ण घेप्पदि त्ति ओहिणाणं वत्थुस्स एगदेसपरिच्छेदयं, ववहारणयवंजणपज्जाएहि एत्थ वत्थुत्तब्भुवगमादो। ण मदि -

विशेषार्थ - यहांपर जो मतिज्ञानको प्रत्यक्षाप्रत्यक्षात्मक परोक्ष कहा है उसका अभिप्राय यह है कि इन्द्रियोंके द्वारा वस्तुका जितना अंश स्पष्टरूपसे जाना जाता है उतने अंशमें वह ज्ञान प्रत्यक्ष है, और अवशिष्ट जितना अंश नहीं जाना जात है उसकी अपेक्षा वही ज्ञान अप्रत्यक्ष है। यहां प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष शब्दोंका प्रयोग लोकव्यवहारकी अपेक्षासे किया गया है। किन्तु आगममें मतिज्ञानको परोक्ष ही माना है। इन्ही दोनों अपेक्षाओंसे यहांपर मतिज्ञानको प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षरूप परीक्ष कहा गया है।

शंका -- यदि ऐसा है अवधिज्ञानके भी प्रत्यक्ष- परोक्षात्मकता प्राप्त होती है, क्योंकि, वस्तु त्रिकाल-गोचर अनन्त पर्यायोंसे उपचित है, किन्तु अवधिज्ञानके प्रत्यक्ष द्वारा उस प्रकारकी वस्तुके जाननेकी शक्तिका अभाव है ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, अवधिज्ञानमें प्रत्यक्षरूपसे वर्तमान समस्त पर्यायविशिष्ट वस्तुका ज्ञान पाया जाता है, तथा भूत और भावी असंख्यात पर्याय-विशिष्ट वस्तुका ज्ञान देखा जाता है।

शंका -- इसप्रकार माननेपर भी अवधिज्ञानसे पूर्ण वस्तुका ज्ञान नहीं होता है , इसलिए अवधिज्ञानके प्रत्यक्ष-परोक्षात्मक प्राप्त होती है ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, व्यवहारके योग्य, एवं द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक, इन दोनों नयोंके समूहरूप वस्तुमें अवधिज्ञानकी प्रत्यक्षता पाई जाती है।

अवधिज्ञान अनन्त व्यंजनपर्यायोंको नहीं ग्रहण करता है, इसलिए वह वस्तुके एकदेशका जाननेवाला है, ऐसा भी नहीं जानना चाहिए, क्योंकि, व्यवहारनयके योग्य व्यंजनपर्यायोंकी अपेक्षा यहां वस्तुत्व माना गया है। यदि कहा जाय कि

स्पष्ट हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थ प्रादेशिक प्रत्यक्षम, अवग्रहेहावायधारणात्मकम ।
अनिन्द्रियप्रत्यक्षम स्मृतिसंज्ञाचिन्ताभिनिबोधात्मकम। अतीन्द्रियप्रत्यक्षं व्यवसायात्मक
स्फुटमवितयमतीन्द्रियमव्यवधान लोकोत्तरमात्मार्थविषयम। लघीय. स्वो. वि. का. ६१, पृ. २१.
प्रत्यक्षं विशदं ज्ञानं विधेति ब्रुवाणेनापि (अकलंकेन) मुख्यमतीन्द्रियं पूर्णं केवलमपूर्णमवधिज्ञानं
मनःपर्यज्ञानं चेति निवेदितमेव, तस्याक्षमात्मानमाश्रित्य वर्तमानत्वात्। व्यवहारतःपुनरिन्द्रिय-
प्रत्यक्षमनिन्द्रियप्रत्यक्षमिति वैशद्यांशसम्भवावार्ता त. श्लो. वा. १, ११. पृ. १८२.

छकखंडागमे जीवट्टाणं (१, ९-१, १४.

णाणस्स वि एसो कमो, तस्स वट्टमाणसेसपज्जायविसिट्ठ-वत्थुपरिच्छेयण सत्तीए अभावादो,
तस्स पच्चक्खग्गहणणियमाभावादो च। अत्रोपयोगी श्लोक : -

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः।

अविभ्राडभावसम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा (१ आ. मी. १०७)। ६।

एवंविहस्स ओहिणाणस्स जमावारयं तमोहिणाणावरणीयं।

परकीयमनोगतोऽर्थो मनः, तस्य पर्यायाः विशेषाः मनःपर्यायाः, तान जानातीति मनःपर्यय
ज्ञानम् (२ परकीयमनोगतोऽर्थो मन इत्युच्यते साहचर्यात्तस्य पर्ययण परिगमनं मनःपर्ययः। स. सि.
१, ९ मनःप्रतीत्य प्रतिसंघाय वा ज्ञानं मनःपर्ययः। त. रा. वा. १, ९ XXXXमनःपर्येति योऽपि वा। स
मनःपर्ययों ज्ञेवो मनोन्नार्था मनोगताः। परेषां स्वमनो वापि तदालम्बनमात्रकर्मा त. श्लो. वा. १,
९, ७. पज्जवणं पज्जयणं पज्जाओ वा मणम्मि मणसो वा। तस्स व पज्जायादिन्नाणं मणपज्जवं
नाणां वि.आ.भा. ८३.) तं च मणपज्जवणाणं दुविहं उजुमइ-विउलमइभेएण। तत्थ उजुमई
चिंतियमेव जाणदि, णाचिंतियं। चिंतियं पि जाणमाणं उज्जुवेण चितियं चेव जाणदि, ण वक्कं
चिंतियं। विउलमईपुण चिंतियमचिंतियं पि वक्कचिंतियमवक्क चिंतियं पि जाणादि।

मतिज्ञानका भी यही क्रम मान लेंगे, सो नहीं माना जा सकता, क्योंकि, मतिज्ञानके वर्तमान अ - पर्याय-विशिष्ट वस्तुके जाननेकी शक्तिका अभाव है, तथा मतिज्ञानके प्रत्यक्षरूपसे अर्थ-ग्रहण करनेकेनियमका अभाव है। इस विषयमें यह उपयोगी श्लोक है -

जो नैगम आदि नय और उनके भेद- प्रभेदरूप उपनयोंके विषयभूत त्रिकाल-वर्ती पर्यायोंका अभिन्न सम्बन्धरूप समुदाय है, उसे द्रव्य कहते हैं। वह द्रव्य कथंचित् एकरूप और कथंचित् अनेकरूप है ॥६॥

इस प्रकारके अवधिज्ञानका आवरण करनेवाला जो कर्म है, उसे अवधिज्ञानावरणीय कहते हैं।

दूसरे व्यक्तिके मनमें स्थित पदार्थ मन कहलाता है। उसकी पर्यायों अर्थात् विशेषोंको मनःपर्यय कहते हैं। उनको जो ज्ञान जानता है वह मनःपर्ययज्ञान कहलाता है। वह मनःपर्ययज्ञान ऋजुमति और विपुलमतिके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान मनमें चिन्तवन किये गये पदार्थको ही जानता है, अचिन्तित पदार्थको नहीं। चिन्तित पदार्थको भी जानता हुआ सरलरूपसे चिन्तित पदार्थको ही जानता है, वक्ररूपसे चिन्तित पदार्थको नहीं। किन्तु, विपुलमति मनःपर्ययज्ञान चिन्तित, अचिन्तित पदार्थको भी, तथा वक्रचिन्तित और अवक्र चिन्तित पदार्थको भी जानता है।

१ आ. मो. १०७
